अर्थः आर्यों को ईश्वराभिमुख करके विशेष परमात्मा एवं आर्यों को [illegible] कराना

ओ३म्

आर्याभिविनयः

प्राकृतभाषानुवादसहितः

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितः

॥ सर्वलोकहिताय ॥

—स च—

अन्वय-पदार्थ-प्रदोपटीकोपेतः

टीकाकारौ :—

श्रीयुतपण्डितसुदर्शनदेवाचार्यः
श्रीयुतपण्डितराजवीराचार्यश्च

प्रकाशक :—

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट

४५५ खारी बावली दिल्ली-६

१९६०८५३०८६ सृष्टि-संवत्

पूर्व प्रकाशित	४४००	२०४२ वि०	फुल कपड़े की
चतुर्थ संस्करण	३३००	१९८६ ई०	जिल्द 8-00
योग	७७००	१६१ दयानन्दाब्द	

आर्याभिविनयः

महर्षि दयानन्द
सरस्वती

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट

वेद प्रचार आर्य समाज की आत्मा है। दुनिया की सर्वोत्तम व तर्क पूर्ण विचार धारा का नाम आर्य समाज है।

मुझे वह ज्ञान ज्योति दीजिए जिससे मैं आपके दर्शन कर पाऊं

आर्याभिविनय के प्रस्तुत संस्करण की प्रमुख विशेषताएँ

१. परोपकारिणी-सभा के प्रामाणिक तथा प्राचीनतम संस्करणों से पाठ मिलाने के कारण शुद्ध तथा प्रामाणिक संस्करण।

२. उपासकों एवं स्वाध्यायशील पुरुषों को मन्त्रार्थ हृदयंगम कराने के लिए महर्षि-व्याख्यानुसार 'पदार्थ-प्रदीप' टीका सहित होने से अपूर्व संस्करण।

३. समस्त वेद-मन्त्रों का सस्वर तथा शुद्ध प्रकाशन।

४. समस्त वेद-मन्त्रों का महर्षि के भाष्य से और महर्षि की व्याख्या के अनुसार अन्वय-सहित प्रकाशन।

५. प्रकाशकों के कल्पित संसोधनों से रहित होने से मन्त्रार्थद्रष्टा महर्षि-व्याख्यात अर्थों का ही प्रकाशन।

६. मैपलीथो के चिकने सफेद उत्तम कागज पर मोटे टाईप में सुन्दर प्रकाशन।

७. कागज की महंगाई होने पर भी लागतमात्र से भी कम मूल्य होने से पाठकों को सुलभ।

पिछले संस्करण का

प्रकाशकीय

ईश्वर के साक्षात्-द्रष्टा महर्षि दयानन्द सरस्वती ने ऋग्वेद और यजुर्वेद इन दो वेदों से ईश्वर-भक्ति विषयक मन्त्रों को चुनकर इस ग्रन्थ में उनकी अनुपम व्याख्या लिखी है। जो पाठक साधारण शिक्षित हैं, वे इस ग्रन्थ को पढ़ते समय यह जानना चाहते हैं कि महर्षि ने मन्त्र के प्रत्येक पद का क्या अर्थ किया है? किन्तु संस्कृत और हिन्दी भाषा का साधारण ज्ञान रखने वाले पाठकों को मन्त्र के प्रत्येक पद का अर्थ महर्षिकृत मन्त्र-व्याख्यान से समझ में नहीं आता। विद्वानों को भी अनेक-स्थलों पर महर्षि-कृत व्याख्यान से मन्त्र के प्रत्येक पदार्थ को पकड़ने में कठिनाई अनुभव होती है। कारण यह है कि महर्षि ने वेदभाष्य की भाँति प्रत्येक पद का निर्देश करके उसका अर्थ इस ग्रन्थ में नहीं दर्शाया है। जिस पद को उन्होंने मन्त्र-व्याख्यान में लिखना उचित समझा उसका उल्लेख कर दिया और शेष को भाषा में लिख दिया। इतना होने पर भी मन्त्र के प्रत्येक पद का अर्थ महर्षि के मन्त्र-व्याख्यान में निहित है।

आजकल स्वाध्यायशील आर्य लोग ईश्वर-भक्ति विषयक उन्हीं ग्रन्थों का स्वाध्याय करते हैं, जिनमें मन्त्र के प्रत्येक पद का अर्थ भी दिखाया गया हो। प्राय: पाठक इस ग्रन्थ में यह बात न होने से इस आर्ष ग्रन्थ की उपेक्षा करके आर्य-विद्वानों के किये अनार्ष मन्त्रार्थों का स्वाध्याय करते हैं। ये अनार्ष मन्त्रार्थ संदिग्ध ही होते हैं क्योंकि ऋषियों का किया वेदार्थ (मन्त्रार्थ) ही सन्देह-रहित और प्रामाणिक होता है। आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मुख्य उद्देश्य आर्ष साहित्य का प्रचार एवं प्रसार है। इसी उद्देश्य से ट्रस्ट ने अपूर्व भक्ति से पूर्ण इस आर्ष ग्रन्थ का प्रकाशन किया है। स्वाध्यायशील पाठकों की उक्त कठिनाई को भी सरल कर दिया है। इस संस्करण में मन्त्र के प्रत्येक

पदार्थंत था अन्वय को महर्षिकृत व्याख्यान से ही चुनकर पाठकों की सुविधा के लिये पृथक् सन्दर्भ में छाप दिया है।

विरजानन्द वैदिक संस्थान गाजियाबाद (मेरठ) से भी इस ग्रन्थ का एक संस्करण प्रकाशित हुआ है, जिस में पाठकों की पदार्थ-सम्बन्धी इस कठिनाई को दूर करने का प्रयास किया गया है किन्तु हमारे और उनके दृष्टिकोण में महान् अन्तर यह है कि उन्होंने आर्ष-अनार्ष मन्त्रार्थ में कुछ भी भेद नहीं समझा है। उन्होंने अन्य-अन्य आर्य-विद्वानों द्वारा किये उन-उन मन्त्रों के पदार्थ इस ग्रन्थ में दे दिये हैं। बहुत से स्थलों पर वे पदार्थ महर्षिकृत मन्त्र-व्याख्यान से मेल ही नहीं खाते हैं। मन्त्र का व्याख्यान महर्षि का और पदार्थ किसी आर्य-विद्वान् का, ऐसा करना सर्वथा असङ्गत है, और इससे अनार्ष मन्त्रार्थ का प्रचार और आर्ष-मन्त्रार्थ का तिरस्कार होता है। हमने आर्ष मन्त्रार्थ के प्रचार एवं सत्कार में महर्षिकृत व्याख्यान से ही पदार्थ तथा अन्वय को चुनकर आर्ष-पदार्थ पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किया है।

श्री पण्डित सुदर्शनदेव आचार्य ने बहुत पुरुषार्थ और योग्यता से इस ग्रन्थ के 'पदार्थ-प्रदीप' को तैयार किया है तथा श्री राजवीर शास्त्री ने प्रत्येक मन्त्र का अन्वय महर्षि की व्याख्यानुसार किया है, जिसके लिये हम उनके अत्यन्त आभारी हैं।

इस ग्रन्थ की विशेषता का अनुभव करते हुए प्रचार की दृष्टि से इसका मूल्य लागत मात्र से भी न्यून रखा है। आशा है आर्य सज्जन महर्षि के इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का अधिकाधिक प्रचार करके आर्ष ग्रन्थों का मान बढ़ायेंगे।

फाल्गुन कृष्णा द्वादशी
सं० २०३५ वि०
सन् २३-२-१९७९ ई०

ऋषिचरणों का अनुचर—
स्व० दीपचन्द आर्य
प्रधान—आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
कमलानगर (दिल्ली-७)

प्राक्कथन

[लेखकः—सुदर्शनदेव आचार्य, एम० ए०]

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इस 'आर्याभिविनय' ग्रन्थ की रचना किस लिये की ? इस प्रश्न के उत्तर में वे स्वयं उपक्रमणिका में लिखते हैं—"इस ग्रन्थ से तो केवल मनुष्यों को ईश्वर का स्वरूप-ज्ञान और भक्ति, धर्मनिष्ठा, व्यवहारशुद्धि इत्यादि प्रयोजन सिद्ध होंगे"। महर्षि का यह लेख हमें बतला रहा है कि उन्होंने आर्याभिविनय ग्रन्थ इसलिये लिखा है कि जिससे आर्य लोगों को ईश्वर के सच्चे स्वरूप का ज्ञान हो, स्वरूप-ज्ञान से ईश्वर के प्रति अगाध भक्तिभाव बढ़े, ईश्वर की भक्ति से धर्म में श्रद्धा एवं दृढ़-विश्वास बद्धमूल हो जाये, धर्माचरण से लौकिक-व्यवहार भी सर्वथा विशुद्ध एवं निर्मल हो जाये। इन सबका मूल ईश्वर का स्वरूप-ज्ञान है। इस आर्याभिविनय में ईश्वर के स्वरूप ज्ञान का विस्तृत वर्णन महर्षि ने वेदमन्त्रों के अधार पर बड़ी सरल भाषा में किया है।

महर्षि इसी ग्रन्थ की उपक्रमणिका में लिखते हैं कि जो लोग ईश्वर को पहचान लेते हैं वे बड़े भाग्यशाली हैं और वे सब-दुखों से छूट जाते हैं और जो ईश्वर को नहीं जानते वे सदा दुःख-सागर में पड़े रहते हैं! महर्षि के अपने शब्द इस प्रकार हैं—"जो नर इस संसार में अत्यन्त प्रेम, धर्मात्मता, विद्या, सत्सङ्ग, सुविचारता, निर्वैरता, जितेन्द्रियता, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से परमात्मा का स्वीकार (आश्रय) करता है वही जन अतीव भाग्यशाली है, क्योंकि वह मनुष्य यथार्थ सत्य विद्या से सम्पूर्ण दुःखों से छूट के परमानन्द में परमात्मा की

प्राप्ति रूप जो मोक्ष है उसको प्राप्त होता है, और दुःख-सागर से छूट जाता है"।

महर्षि ने परमात्मा की प्राप्ति अर्थात् मोक्ष के लिए आठ बातों का वर्णन किया है—१. अत्यन्त प्रेम—संसार के जितने भी प्राणी हैं उन सब से अत्यन्त प्रेमभाव रखे, सबके कल्याण एवं उपकार की कामना करे। २. धर्मात्मता—अपनी आत्मा को सदा धर्म की ओर लगाये रखे, अधर्म की ओर न जाने दे। ३. विद्या—यथार्थ विद्या के लिये वेदादि-शास्त्रों का अध्ययन करे, विद्या और अविद्या के स्वरूप को पहचाने। विद्या अर्थात् चेतन जगत् अविद्या अर्थात् जड़ जगत् को समझे। विद्या और अविद्या को अच्छे प्रकार जानने के लिये सत्यार्थप्रकाश का नवम--समुल्लास तथा महर्षिकृत यजुर्वेदभाष्य का ४०वाँ अध्याय पाठक मननपूर्वक अध्ययन करें तथा महर्षिकृत इस आर्याभिविनय ग्रन्थ का वार-वार पारायण करें। ४. सत्सङ्ग—वेद के विद्वान् ईश्वरभक्त महापुरुषों के सङ्ग में रहें, उनसे प्रश्न-उत्तर करके शंकाओं का समाधान करें, कुसङ्ग से सदा दूर रहें। ५. सुविचारता—मन में सदा अच्छे विचार रखें, इसके लिये ऋषिकृत ग्रन्थों का अध्ययन करते रहें। आर्ष ग्रन्थों के अध्ययन से विचारों में उत्तमता एवं निर्मलता बढ़ती है, विचारों को दूषित करने वाली पुस्तकों को न पढ़ें। ६. निर्वैरता—किसी से वैर-भाव न रखें, अहिंसा को प्रतिष्ठित करें। ७. जितेन्द्रियता पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पाँच कर्मेन्द्रियों तथा ग्यारहवें मन को भी अपने वश में रखें, इन्द्रियों के दास न बनें, इनके स्वामी बनकर रहें। ८. प्रत्यक्षादि प्रमाण—ईश्वर को जानने के लिये प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों का समझना आवश्यक है। प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव, अभाव ये प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण हैं। ये आठ प्रमाण सत्यासत्य की परीक्षा के लिये कसौटी हैं। इनकी विशेष व्याख्या महर्षिकृत सत्यार्थप्रकाश के तृतीयसमुल्लास में देख लें।

जो लोग ईश्वर-भक्ति से रहित हैं, वे सदा दुःखसागर में पड़े रहते हैं। महर्षि इसी ग्रन्थ की उपक्रमणिका में लिखते हैं—"जो विषय-लम्पट, विचार-रहित, विद्या-धर्म-जितेन्द्रियता-सत्सङ्ग-रहित, छल-कपट-अभिमान-दुराग्रहादि दुष्टता-युक्त है सो वह मोक्ष-सुख को प्राप्त नहीं होता, क्योंकि वह ईश्वरभक्ति से विमुख है, इसलिये जन्म, मरण, ज्वरादि पीडारूपों से पीड़ित होके सदा दुःख-सागर में ही पड़ा रहता है।"

महर्षि के इस लेख से स्पष्ट हो रहा है कि उन्होंने ईश्वर-भक्ति से विमुख लोगों को ईश्वराभिमुख करने के लिये एवं ईश्वराभिमुख लोगों को मोक्ष-प्राप्ति कराने के लिये यह आर्याभिविनय ग्रन्थ रचा है। यही तात्पर्य ग्रन्थ के नाम से भी स्पष्ट है। अभि+वि+नयः=अभिविनयः। अभि=आर्यों को ईश्वराभिमुख करके, वि=विशेष परमात्मा एवं मोक्ष की नयः=प्राप्ति कराना॥

पदार्थ-प्रदीप-टीका—महर्षि ने जिन ऊँची भावनाओं को लेकर इस ग्रन्थ की रचना की है, उन्हीं भावनाओं से बहुत से आर्य-भाई इस ग्रन्थ की स्वाध्याय करते हैं। बहुत से आर्य-बन्धु इसका दैनिक-पाठ भी करते हैं। आर्याभिविनय के पाठक जहाँ श्रद्धा भक्ति से वेदमन्त्रों का पाठ करते हैं एवं महर्षि के व्याख्यान को भी प्रेम से पढ़ते हैं वहाँ मन्त्र के प्रत्येक पद का अर्थ भी समझना चाहते हैं। महर्षि ने अपने व्याख्यान में बहुत से मन्त्र-पद तो दे दिये हैं, कुछ एक नहीं भी दिये हैं। विद्वान् लोग तो प्रायः उनको समझ लेते हैं और कहीं-कहीं तो विद्वानों को भी कठिनाई होती है, साधारण स्वाध्यायशील आर्यों को तो कठिनाई है ही। इस कठिनाई को दूर करने के लिये 'पदार्थप्रदीपटीका' सहित यह आर्याभिविनय ग्रन्थ पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किया गया है।

इस 'पदार्थ-प्रदीप-टीका' में प्रत्येक पद का अर्थ महर्षि के किये मन्त्र-व्याख्यान से ही लिया गया है। अपना अर्थ नहीं दिया है

साथ ही मन्त्रों का अन्वय भी दिया गया है। मन्त्रों का अन्वय भी महर्षि दयानन्द के भाष्य से ही संगृहीत किया गया है। जिन मन्त्रों पर महर्षि का भाष्य नहीं है, उनका अन्वय महर्षि के इस ग्रन्थ की व्याख्या के अनुसार लिखा है। अन्वय तथा पदार्थ दोनों से महर्षि के व्याख्यान को पाठक लोग भली-भाँति समझ सकेंगे और मन्त्र के अर्थ को भी अधिक हृदयङ्गम कर सकेंगे।

महर्षि-मन्त्रार्थ महिमा—पाठकों को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि क्या हम यह वेदार्थ एवं मन्त्रार्थ किसी मनुष्य का किया पढ़ रहे हैं अथवा किसी ऋषि का किया हुआ ? मनुष्यकृत वेदार्थ को सन्देह की दृष्टि से और ऋषिकृत वेदार्थ को श्रद्धा की दृष्टि से पढ़ा करें। क्योंकि मनुष्यकृत वेदार्थ में त्रुटि एवं दोषों की सम्भावना बनी रहती है जबकि ऋषिकृत वेदार्थ सर्वथा दोष-रहित होता है। स्वयं महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी प्राचीन महर्षियों के किये वेदार्थ का बड़ा सम्मान किया है और उन्हीं को पढ़ने-पढ़ाने के लिये उपदेश किया है। महर्षि निरुक्त का प्रमाण देते हुए लिखते हैं—

"**इन मन्त्रों के अर्थ का प्रत्यक्ष वे लोग कभी नहीं कर सकते, जो ऋषि नहीं और तपस्वी नहीं अर्थात् जिनका अन्तःकरण अशुद्ध है तथा जो अविद्वान् हैं।**······वेदार्थज्ञ मनुष्यों में भी अधिक विद्यावान् मनुष्य ही प्रशस्त होता है और वही वेदाविरोधी सुतर्क के द्वारा ही मन्त्रों का उपयुक्त अर्थ कर सकता है।······ यदि कोई पूर्ण विद्वान् मनुष्य वेदार्थ का प्रकाश करता है तो वही ऋषि-प्रोक्त व्याख्यान समझना चाहिये और जो अल्पबुद्धि पुरुष करता है वह अनार्ष होता है। उसका किसी को आदर नहीं करना चाहिये क्योंकि वह अनर्थ-युक्त है। उसका आदर करने से मनुष्यों को भी अनर्थापत्ति होगी"।
(ऋग्वेदादि० वेदविषय०)।

महर्षि के वेदार्थविषयक महत्त्वपूर्ण लेख से स्पष्ट है कि मन्त्रार्थ

करने का अधिकार तपस्वी, शुद्ध अन्त:करण वाले पूर्ण-विद्वान् महर्षियों को ही है। तपस्या से रहित, मलिन अन्तःकरण वाले, अल्पविद्या वाले पक्षपाती मनुष्य वेदार्थ करने का अधिकार नहीं रखते। उनके किये मन्त्रार्थ दोष-रहित न होने से जनता के लिये अनर्थ का कारण बनते हैं। अतः महर्षि ने चेतावनी दी है कि इस प्रकार के अनार्ष मन्त्रार्थों का कदापि सत्कार न करें अपितु महर्षियों के किये मन्त्र-व्याख्यानों का श्रद्धापूर्वक अध्ययन करें। वेदार्थ करने के लिए कितनी विद्या आवश्यक है, इसका उल्लेख महर्षि ने (ऋग्वेदादि० पठन-पाठन विषय में) इस प्रकार किया है—"मनुष्य लोग वेदार्थ जानने के लिये अर्थ-योजना सहित 'व्याकरण-अष्टाध्यायी, धातुपाठ, उणादिगण, गणपाठ और महाभाष्य' शिक्षा, कल्प, निघण्टु, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष ये छः वेदों के अङ्ग, मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त ये छः शास्त्र जो वेदों के उपाङ्ग अर्थात् जिनसे वेदार्थ ठीक-ठीक जाना जाता है तथा 'ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ ये चार ब्राह्मण' इन सब ग्रन्थों को क्रम से पढ़ के अथवा जिन्होंने इन सम्पूर्ण ग्रन्थों को पढ़ के जो सत्य-सत्य वेद-व्याख्यान किये हों उनको देख के वेद का अर्थ यथावत् जान लेवें"। अतः सबको ऋषि व्याख्या का ही अध्ययन करना चाहिए।

एक तुलना—ऋषिकृत मन्त्रार्थ और मनुष्यकृत मन्त्रार्थ की क्या तुलना की जा सकती है। किन्तु पाठकों के परिचय के लिये कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं। विरजानन्द वैदिक संस्थान से प्रकाशित आर्याभिविनय में महर्षि का शब्दार्थ न देकर, अपना शब्दार्थ दिया है। अब उक्त संस्थान के शब्दार्थ और महर्षि के शब्दार्थ को बुद्धि की तुला पर तोलकर देखिये—

भद्रम् ॥ प्रथम प्रकाश के छठे मन्त्र में संस्थान के शब्दार्थ में 'भद्रम्' पद का अर्थ 'भलाई' किया है, जबकि महर्षि ने 'व्यावहारिक

और पारमार्थिक सुख' अर्थ किया है। 'भद्रम्' पद 'भदि कल्याणे सुखे च' धातु से बनता है। महर्षि ने धातु के अर्थ के अनुसार कल्याण= व्यावहारिक सुख एवं पारमार्थिक सुख अर्थ सर्वथा सुसंगत किया है। संस्थान का किया अर्थ गोल है।

रन्धय (१ । १४) ॥ संस्थान ने रन्धय पद का अर्थ किया है—सीधा करो। महर्षि का अर्थ है—रन्धय=समूलान् विनाशय, मूल सहित नष्ट कर दीजिये। यह पद 'रध हिंसासंराध्योः' से बना है अतः महर्षि का अर्थ शुद्ध है। दोनों अर्थों में दिन-रात का भेद है।

सजोषाः (१ । १८) ॥ इस पद का संस्थान ने 'भगवान्' अर्थ किया है जो निराधार है। महर्षि का अर्थ है—उत्तम प्रीतियुक्त आप में रमण और आपका सेवन करने वाले हम लोग। यह पद 'जुषी प्रीतिसेवनयोः' धातु से बना है। महर्षि के अर्थ में प्रीति और सेवन दोनों अर्थ विद्यमान हैं।

पाठकगण इन अर्थों पर भी विचार करें—गोभिः (१ । ३५) गौओं से (सं०)। गाय, उत्तम इन्द्रिय, श्रेष्ठ पशु (ऋषि) ॥ अश्वैः (१ । ३५) घोड़ों से (सं०)। सर्वोतम अश्व विद्या (विज्ञानादि युक्त) तथा अश्व अर्थात् श्रेष्ठ घोड़ा आदि पशुओं और चक्रवर्ती राज्यैश्वर्य से (ऋषि) ॥ मरुत्वन्तम् (१ । ४४) बल वाले तीव्र गति वाले परमात्मा को (सं०) यहाँ संस्थान ने परमात्मा को तीव्र गति स्वीकार की है और उसे परमात्मा का बल माना है। सर्वव्यापक परमात्मा में गति मानना सिद्धान्त-विरुद्ध है। महर्षि का अर्थ देखिये—"परमानन्द बल वाले इन्द्र परमात्मा को" (ऋषि)। महर्षि ने यहाँ परमात्मा में परमानन्द-बल माना है जो सर्वथा संगत है ॥ तोके-तनये (१ । ५१) बाल बच्चों पर (सं०)। तोक और तनय दोनों पद निघण्टु में अपत्य अर्थ में पढ़े गये हैं। संस्थान ने गोल अर्थ में लिखा है, दोनों के अर्थ-भेद को नहीं समझा सका। महर्षि का अर्थ देखिये—तोके=

कनिष्ठ पुत्र में, तनये=मध्यम और ज्येष्ठ पुत्र में (ऋषि)। महर्षि का पृथक्-पृथक् अर्थ स्पष्ट है।

संस्थान के अर्थ ऐसे भी हैं जहाँ मक्खी पर मक्खी मारी गई है। जबकि महर्षि के अर्थ बड़े सारगर्भित एवं महत्त्वपूर्ण हैं। जैसे—आदित्यः (२।४) आदित्य हैं (सं०)। जिसका कभी नाश न हो और जो स्वप्रकाश स्वरूप हो (ऋषि)॥ शुक्रम् (२।४) शुक्र है (सं०)। चेतनस्वरूप ब्रह्म जगत् का कर्त्ता (ऋषि)॥ वायुः (२।४) वायु है (सं०)। सब जगत् का धारण करने वाला, अनन्त बलवान्, प्राणों से भी प्रियस्वरूप (ऋषि)॥ बन्धुः (२।६) बन्धु (सं०)। दुःखनाशक और सहायक (ऋषि)॥

इस प्रस्तुत तुलना से पाठक बड़ी सरलता से अनुमान लगा सकते हैं कि ऋषिकृत मन्त्रार्थ और मनुष्यकृत मन्त्रार्थ में कितना महान् अन्तर है। ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित प्रथम संस्करण के १३ पृष्ठों में विस्तार से इस नूतन संस्करण की समीक्षा की गई थी जिसका अभी तक कोई उत्तर नहीं दिया गया। हम आर्य बन्धुओं का बड़ा सौभाग्य है कि महर्षि ने इस आर्याभिविनय ग्रन्थ में वेदमन्त्रों का व्याख्यान बड़ी सरल आर्यभाषा में हमारे लिये प्रदान किया है। मन्त्रों का ऋषिकृत, सब दोषों से रहित विशुद्ध अर्थ अपनी सरल भाषा में पढ़ने को मिल जाये इससे बड़ा सौभाग्य और क्या हो सकता है।

आर्य जगत् का कर्त्तव्य है कि इस आर्याभिविनय पुस्तक को दैनिक स्वाध्याय का ग्रन्थ समझें और इसके एक मन्त्र का प्रतिदिन पाठ एवं मनन किया करें। महर्षि की इच्छा के अनुसार हम इस आर्याभिविनय ग्रन्थ के स्वाध्याय से अवश्य ईश्वराभिमुख होंगे एवं मोक्ष-मार्ग की ओर बढ़ेंगे।

ऋषि-ग्रन्थों के संशोधकों की योग्यता ॥

महर्षि-ग्रन्थों के सम्पादक एवं संशोधकों की योग्यता का उनके द्वारा रचा एक श्लोक यहां प्रमाण रूप में प्रस्तुत किया जाता है। आर्याभिविनय के नूतन संस्करण की भूमिका के लेखक श्री सत्यानन्द शास्त्री ने भूमिका के अन्त में एक अनुष्टुप् छन्द इस प्रकार लिखा है :—

नम ऋषिभ्यः पूर्वेभ्यः नूतनेभ्यश्च सर्वदा।
यैरादिवागद्यावधि रक्षितोऽभून्निरन्तरम् ॥

इस साधारण से श्लोक में अनेक त्रुटियाँ एवं अशुद्धियाँ प्रत्यक्ष हैं। पूर्वेभ्यः नूतनेभ्यः, यहाँ विसर्ग-सन्धि होकर 'पूर्वेभ्यो नूतनेभ्यः' ऐसा पाठ चाहिये। और पर्वताकार अशुद्धि इसमें यह है कि 'आदिवाक्' पद स्त्रीलिङ्ग है और उसके लिये प्रयुक्त क्तान्त क्रिया 'रक्षितः' को पुल्लिङ्ग में रखा गया है। एक साधारण संस्कृत ज्ञान रखने वाला व्यक्ति भी इस प्रकार की अशुद्धि को भली-भांति समझता है। यह है योग्यता ऋषि ग्रन्थों के संशोधकों की !!

भावार्थ की दृष्टि से भी उक्त श्लोक में असंगति पाई जाती है। इस पद्य में 'अद्यावधि' पद का प्रयोग करके 'अभूत्' क्रिया का प्रयोग किया गया है। जिसका अर्थ यह है कि आज तक जिन्होंने आदिवाक्= वेदवाणी की रक्षा की थी, यह भाव असंगत है। भाव यह होना चाहिये कि आज तक जिन्होंने रक्षा की है, अतः इस भाव के अनुसार अद्यावधि प्रयोग के पश्चात् 'रक्षिताऽस्ति' प्रयोग होना चाहिये।

इसी प्रकार 'वेदवाणीविलासीनां वशंवदः' यहाँ विलासी पद में 'नाम' से पूर्व दीर्घ इकार का प्रयोग सर्वथा अशुद्ध है।

पाठक अनुमान लगा सकते हैं कि जब ऐसी योग्यता वाले ऋषि-ग्रन्थों के संशोधन के लिये लेखनी उठायेंगे तब कैसे कैसे अनर्थ होने की सम्भवना है। अतः ऋषिभक्त आर्य विद्वानों को इस भयावह संशोधन की धारा को तत्काल बन्द करने के लिये कटिबद्ध हो जाना चाहिये ॥

॥ ओ३म् ॥

अथार्य्याभिविनयोपक्रमणिकाविचारः

सर्वात्मा सच्चिदानन्दोऽनन्तो यो न्यायकृच्छुचिः ॥
भूयात्तमां सहायो नो दयालुः सर्वशक्तिमान् ॥ १ ॥
चक्षूरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे चैत्रे मासि सिते दले ।
दशम्यां गुरुवारेऽयं ग्रन्थारम्भः कृतो मया ॥ २ ॥
बहुभिः प्रार्थितः सम्यग्ग्रन्थारम्भः कृतोऽधुना ।
हिताय सर्वलोकानां ज्ञानाय परमात्मनः ॥ ३ ॥
वेदस्य मूलमन्त्राणां व्याख्यानं लोकभाषया ।
क्रियते सुखबोधाय ब्रह्मज्ञानाय सम्प्रति ॥ ४ ॥
स्तुत्युपासनयोः सम्यक् प्रार्थनायाश्च वर्णितः ।
विषयो वेदमन्त्रैश्च सर्वेषां सुखवर्द्धनः ॥ ५ ॥
विमलं सुखदं सततं सुहितं,
जगति प्रततं तदु वेदगतम् ।
मनसि प्रकटं यदि यस्य सुखी,
स नरोऽस्ति सदेश्वरभागधिकः ॥ ६ ॥
विशेषभागी ह वृणोति यो हितं,

नरः परात्मानमतीवमानतः ।
अशेषदुःखात्तु विमुच्य विद्यया,
स मोक्षमाप्नोति न कामकामुकः ॥ ७ ॥

व्याख्यान--जो परमातमा, सब का आत्मा, सत् चित्, आनन्दस्वरूप, अनन्त, अज, न्यायकारी, निर्मल, सदा पवित्र, दयालु, सब सामर्थ्यवाला हमारा इष्टदेव है वह हमको सहाय नित्य देवे, जिससे महाकठिन काम भी हम लोग सहज से करने को समर्थ हों। हे कृपानिधे! यह काम हमारा आप ही सिद्ध करने वाले हो, हम आशा करते हैं कि आप अवश्य हमारी कामना सिद्ध करेंगे ॥ १ ॥

संवत् १९३२ मिती चैत्र सुदी १० गुरुवार के दिन इस ग्रन्थ का आरम्भ किया है ॥ २ ॥

बहुत सज्जन लोग, सब के हितकारक धर्मातमा विद्वान् विचारशील जनों ने मुझ से प्रीति से कहा, तब सब लोगों के हित और यथार्थ परमेश्वर का ज्ञान तथा प्रेम भक्ति यथावत् हो, इसलिये, इस ग्रन्थ का आरम्भ किया है ॥ ३ ॥

इस ग्रन्थ में केवल दो वेदों के मूल मन्त्रों का प्राकृतभाषा में व्याख्यान किया है, जिसमें सब लोगों को सुखपूर्वक बोध हो और ब्रह्मज्ञान यथार्थ हो ॥ ४ ॥

इस ग्रन्थ में वेदमन्त्रों से सब सुखों की बढ़ानेवाली परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना तथा धर्मादि विषय का वर्णन किया है ॥ ५ ॥

जो ब्रह्म विमलसुखकारक, पूर्णकाम, तृप्त, जगत् में व्याप्त, वही सब वेदों से प्राप्य है, जिसके मन में इस ब्रह्म की प्रकटता (यथार्थ विज्ञान) है वही मनुष्य ईश्वर के आनन्द का भागी है और वही सब से सदैव अधिक सुखी है। ऐसे मनुष्य को धन्य है ॥ ६ ॥

जो नर इस संसार में अत्यन्त प्रेम, धर्मात्मता, विद्या, सत्सङ्ग, सुविचारता, निर्वैरता, जितेन्द्रियता, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से परमात्मा का स्वीकार (आश्रय) करता है वही जन अतीव भाग्यशाली है, क्योंकि वह मनुष्य यथार्थ सत्यविद्या से सम्पूर्ण दुःखों से छूट के परमानन्द परमात्मा की प्राप्तिरूप जो मोक्ष उसको प्राप्त होता है और दुःखसागर से छूट जाता है, परन्तु जो विषय-लम्पट, विचाररहित, विद्या-धर्म-जितेन्द्रियता-सत्संगरहित, छल-कपट-अभिमान-दुराग्रहादि-दुष्टतायुक्त है सो वह मोक्ष-सुख को प्राप्त नहीं होता क्योंकि वह ईश्वरभक्ति से विमुख है ॥ ७ ॥

और वह मनुष्य जन्म-मरण-ज्वरादि-पीड़ाओं से पीड़ित हो के सदा दुःखसागर में ही पड़ा रहता है। इससे सब मनुष्यों को उचित है कि परमेश्वर और उसकी आज्ञा से विरुद्ध कभी नहीं हों, किन्तु ईश्वर तथा उसकी आज्ञा में तत्पर हो के इस लोक (संसार-व्यवहार) और परलोक (जो पूर्वोक्त मोक्ष) इनकी सिद्धि यथावत् करें, यही मनुष्य की कृतकृत्यता है।

इस आर्य्याभिविनय ग्रन्थ में मुख्यता से वेदमन्त्रों का परमेश्वर-सम्बन्धी एक ही अर्थ संक्षेप से किया गया है। दोनों अर्थ करने से ग्रन्थ बढ़ जाता इससे व्यवहार विद्यासम्बन्धी अर्थ नहीं किया गया, परन्तु वेदों के भाष्य में यथावत् विस्तारपूर्वक परमार्थ और व्यवहारार्थ ये दोनों अर्थ सप्रमाण किये जायंगे। जैसे—(तदेवाऽग्निस्तदादित्यस्तद्वायुरित्यादि य० संहिता प्र०, इन्द्रं मित्रं वरुणमित्यादि० ऋ० सं० प्र०, बृहस्पतिर्वै ब्रह्म गणपतिर्वै ब्रह्म, प्राणो वै ब्रह्म, आपो वै ब्रह्म ब्रह्मह्यग्निरित्यादि शतपथ, ऐतरेय ब्राह्मणादि० प्र०। और—महान्तमेवात्मानमित्यादि०) निरुक्तादि प्रमाणों से परब्रह्म ही अर्थ लिया जाता है। तथा मुखादग्निरजायतेत्यादि० य० सं० प्र०, वायोरग्निरित्यादि० ब्राह्मण प्र०, तथा अग्निरग्रणीर्भवतीत्यादि निरुक्त प्रमाणों

से यह प्रत्यक्ष जो रूप गुणवाला दाह प्रकाशयुक्त भौतिक अग्नि वह लिया जाता है इत्यादि दृढ़ प्रमाण, युक्ति और प्रत्यक्ष व्यवहार से दोनों अर्थ वेदभाष्य में लिखे जायँगे। जिससे सायणादिकृत भाष्य-दोष और उसके अनुसार अंग्रेजी कृतार्थ दोषरूप वेदों के कलंक निवृत्त हो जायँगे। और वेदों के सत्यार्थ का प्रकाश होने से, वेदों का महत्त्व तथा वेदों का अनन्तार्थ जानने से मनुष्यों को महालाभ और वेदों में यथावत् प्रीति होगी।

इस ग्रन्थ से तो केवल मनुष्यों को ईश्वर का स्वरूप ज्ञान और भक्ति, धर्मनिष्ठा, व्यवहारशुद्धि इत्यादि प्रयोजन सिद्ध होंगे, जिससे नास्तिक और पाखण्ड मतादि अधर्म में मनुष्य न फसें। किञ्च—सब प्रकार के मनुष्य अति उत्तम हों और सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर की कृपा सब मनुष्यों पर हो। जिससे सब मनुष्य दुष्टता को छोड़ के श्रेष्ठता को स्वीकार करें। यह मेरी परमात्मा से प्रार्थना है सो परमेश्वर अवश्य पूरी करेगा॥

इत्युपक्रमणिका संक्षेपतः सम्पूर्णा॥

॥ ओ३म् ॥

तत् सत् परब्रह्मणे नमः ॥

अथार्याभिविनयः प्रारम्भः ॥

ओं शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्य्यमा ।

शं न इन्द्रो बृहस्पतिः श नो विष्णुरुरुक्रमः ॥ १ ॥

❀ ऋ० अ० १ । अ० ६ । व० १८ । मं० ९ ॥

व्याख्यान—हे सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप, हे नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव, हे अद्वितीयानुपमजगदादिकारण, हे अज, निराकार, सर्वशक्तिमन्, न्यायकारिन्; हे जगदीश, सर्वजगदुत्पादकाधार; हे सनातन, सर्वमंगलमय, सर्वस्वामिन्, हे करुणाकरास्मत्पितः, परमसहायक; हे सर्वानिन्दप्रद, सकलदुःखविनाशक; हे अविद्यान्धकारनिर्मूलक, विद्यार्कप्रकाशक; हे परमैश्वर्यदायक, साम्राज्यप्रसारक; हे अधर्मोद्धारक, पतितपावन, मान्यप्रद; हे विश्वविनोदक, विनयविधिप्रद; हे विश्वासविलासक, हे निरञ्जन, नायक, शर्मद, नरेश, निर्विकार; हे सर्वान्तर्यामिन्, सदुपदेशक, मोक्षप्रद; हे सत्यगुणाकर, निर्मल, निरीह, निरामय निरुपद्रव, दीनदयाकर, परमसुखदायक; हे दारिद्र्यविनाशक, निर्वैरविधायक, सुनीतिवर्द्धक; हे प्रीतिसाधक, राज्यविधायक, शत्रुविनाशक; हे सर्वबलदायक, निर्बलपालक; हे सुधर्मसुप्रापक, हे अर्थसुसाधक, सुकामवर्द्धक, ज्ञानप्रद; हे सन्ततिपालक, धर्म्मसुशिक्षक, रोगविनाशक; हे पुरुषार्थप्रापक, दुर्गुणनाशक, सिद्धिप्रद; हे सज्जनसुखद, दुष्टसुताडन, गर्वकुक्रोधकुलोभविदारक; हे परमेश, परेश, परमात्मन्, परब्रह्मन्; हे जगदानन्दक, परमेश्वर, व्यापक सूक्ष्माच्छेद्य, हे अजरामृताभयनिर्बन्धनादे, हे अप्रतिमप्रभाव, निर्गुणातुल, विश्वाद्य, विश्ववन्द्य, विद्वद्विलासक,

---

❀ यह संख्या इस भाग में सर्वत्र यथावत् जान लेना, क्योंकि आगे केवल अंक संख्या लिखी जायगी।

ऋ० १ । ६ । १८ । ९ ॥ इनमे अष्टक, अध्याय, वर्ग, मन्त्र जान लेना ।

इत्याद्यनन्तविशेषणवाच्य; हे मंगलप्रदेश्वर ! आप सर्वथा सब के निश्चित मित्र हो। हमको सत्यसुखदायक सर्वदा हो। हे सर्वोत्कृष्ट, स्वीकरणीय, वरेश्वर ! आप वरुण अर्थात् सब से परमोत्तम हो, सो आप हमको परम सुखदायक हो। हे पक्षपातरहित, धर्म्मन्यायकारिन्! आप अर्य्यमा (यमराज) हो इससे हमारे लिये न्याययुक्त सुख देने वाले आप ही हो। परमैश्वर्य्यवन् इन्द्रेश्वर ! आप हम को परमश्वर्य-युक्त शीघ्र स्थिर सुख दीजिये।

हे महाविद्यावाचोधिपते, बृहस्पते, परमात्मन् ! हम लोगों को (बृहत्) सब से बड़े सुख को देने वाले आप ही हो। हे सर्वव्यापक, अनन्तपराक्रमेश्वर विष्णो ! आप हमको अनन्त सुख देओ। जो कुछ मांगेंगे सो आप से ही हम लोग मांगेंगे। सब सुखों को देनेवाला आप के विना कोई नहीं है। सर्वथा हम लोगों को आप का ही आश्रय है; अन्य किसी का नहीं, क्योंकि सर्वशक्तिमान् न्यायकारी दयामय सब से बड़े पिता को छोड़ के नीचे का आश्रय हम कभी न करेंगे। आप का तो स्वभाव ही है कि अङ्गीकृत को कभी नहीं छोड़ते सो आप सदैव हम को सुख देंगे, यह हमको दृढ़ निश्चय है ॥ १ ॥

पदार्थः—(शम्) सत्यसुखदायक (नः) हमको (मित्रः) मंगल-प्रदेश्वर / सर्वथा सबका निश्चित मित्र (शम्) परमसुखदायक (वरुण) सर्वोत्कृष्ट, स्वीकरणीय, वरेश्वर / सबसे परमोत्तम (शम्) न्याययुक्त सुख (नः) हमारे लिये (भवतु) हो (अर्यमा) पक्षपातरहित धर्मन्याय-कारी / यमराज (शम्) परमैश्वर्ययुक्त स्थिर सुख (नः) हमको (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् इन्द्रेश्वर (बृहस्पतिः) महाविद्यावाचोऽधिपति, बृहस्पति परमात्मा / सबसे बड़े सुख का देने वाला (शम्) अनन्त सुख (नः) हमको (विष्णुः) सर्वव्यापक (उरुक्रमः) अनन्तपराक्रमेश्वर ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथाऽस्मदर्थमुरुक्रमो मित्रो नः शमुरुक्रमो वरुणो नः शमुरुक्रमोऽर्यमा नः शमुरुक्रमो बृहस्पतिरिन्द्रो नः शमुरुक्रमो विष्णुर्नः शं च भवतु तथा युष्मदर्थमपि भवतु ॥ ●

मूलमन्त्र स्तुति विषय

अ॒ग्निमी॑ळे पु॒रोहि॑तं य॒ज्ञस्य॑ दे॒वमृ॒त्विज॑म् ।
होता॑रं रत्न॒धात॑मम् ॥ २ ॥ ऋ० १ । १ । १ । १ ॥

व्याख्यान—हे वन्द्येश्वराग्ने ! आप ज्ञानस्वरूप हो, आप की मैं स्तुति करता हूँ। सब मनुष्यों के प्रति परमात्मा का यह उपदेश है—हे मनुष्यो ! तुम लोग इस प्रकार से मेरी स्तुति, प्रार्थना और उपासनादि करो जैसे पिता वा गुरु अपने पुत्र वा शिष्य को शिक्षा करता है कि तुम पिता वा गुरु के विषय में इस प्रकार से स्तुति आदि का वर्त्तमान करना। वैसे सबके पिता और परम गुरु ईश्वर ने हमको कृपा से सब व्यवहार और विद्यादि पदार्थों का उपदेश किया है, जिससे हमको व्यवहार-ज्ञान और परमार्थ ज्ञान होने से अत्यन्त सुख हो। जैसे सब का आदिकारण ईश्वर है, वैसे परम विद्या वेद का भी आदिकारण ईश्वर है।

हे सर्वहितोपकारक ! आप "पुरोहितम्" सब जगत् के हितसाधक हो ! हे यज्ञदेव ! सब मनुष्यों के पूज्यतम और ज्ञान यज्ञादि के लिये कमनीयतम हो। "ऋत्विजम्" सब ऋतु वसन्त आदि के रचक, अर्थात् जिस समय जैसा सुख चाहिये उस सुख के सम्पादक आप ही हो। "होतारम्" सब जगत् को समस्त योग और क्षेम के देनेवाले हो और प्रलय समय में कारण में सब जगत् का होम करने वाले हो। "रत्नधातमम्" रत्न अर्थात् रमणीय पृथिव्यादिकों के धारण रचन करने वाले तथा अपने सेवकों के लिये रत्नों के धारण करने वाले एक आप ही हो।

सर्वशक्तिमन् परमात्मन् ! इसलिये मैं वारंवार आपकी स्तुति करता हूँ इसको आप स्वीकार कीजिये जिससे हम लोग आप के कृपा-पात्र होके सदैव आनन्द में रहें ॥ २ ॥

पदार्थः—(अग्निम्) हे वन्द्येश्वर, ज्ञानस्वरूप अग्ने ! आपकी (ईळे) मैं स्तुति करता हूँ (पुरोहितम्) सर्वहितोपकारक, सब जगत् के हितसाधक की (यज्ञस्य) सब मनुष्यों के/ज्ञान यज्ञादि के लिये (देवम्) पूज्यतम/कमनीयतम की (ऋत्विजम्) सब ऋतु—वसन्त आदि के रचक अर्थात् जिस समय जैसा सुख चाहिये उस सुख के सम्पादक की (होतारम्) समस्त जगत् को सब योग और क्षेम के देने वाले की/ प्रलय समय में कारण में सब जगत् का होम करने वाले की (रत्नधातमम्) रत्न अर्थात् रमणीय पृथिव्यादिकों के धारण, रचन करने वाले की / अपने सेवकों के लिये रत्नों को धारण करने वाले की ॥

अन्वयः—हे वन्द्येश्वर ज्ञानस्वरूपाग्ने ! अहं यज्ञस्य पुरोहितमृत्विजं होतारं रत्नधातमं देवमग्निमीळे ॥



मूल प्रार्थना

अग्निनां रयिमंश्नवत्पोषंमेव दिवेदिंवे । यशसं वीरवंत्तमम् ॥ ३ ॥
ऋ० १ । १ । १ । ३ ॥

व्याख्यान—हे महादातः, ईश्वराग्ने ! आपकी कृपा से स्तुति करने वाला मनुष्य "रयिम्" उस विद्यादि धन तथा सुवर्णादि धन को अवश्य प्राप्त होता है कि जो धन प्रतिदिन "पोषमेव" महा-पुष्टि करने और सत्कीर्ति को बढ़ानेवाला तथा जिससे विद्या, शौर्य्य, धैर्य्य, चातुर्य, बल, पराक्रम और दृढांग धर्मात्मा, न्याययुक्त, अत्यन्त वीरपुरुष प्राप्त हों, वैसे सुवर्ण रत्नादि तथा चक्रवर्त्ती राज्य और विज्ञानरूप धन को मैं प्राप्त होऊँ तथा आप की कृपा से सदैव धर्मात्मा होके अत्यन्त सुखी रहूँ ॥ ३ ॥

पदार्थः—(अग्निना) हे महादातः ! ईश्वराग्ने ! आपकी कृपा से (रयिम्) विद्यादिधन तथा सुवर्ण रत्न आदि तथा चक्रवर्त्ती राज्य और विज्ञान रूप धन को (अश्नवत्) प्राप्त होता (पोषम्) महापुष्टि करने वाले धन को (एव) अवश्य (दिवेदिवे) प्रतिदिन (यशसम्) सत्कीर्ति को बढ़ाने वाले धन को (वीरवत्तमम्) विद्या, शौर्य, धैर्य, चातुर्य, बल, पराक्रम और दृढाङ्ग, धर्मात्मा, न्याययुक्त अत्यन्त वीर पुरुष को ॥

अन्वयः—मनुष्यः अग्निनैव दिवेदिवे पोषं यशसं वीरवत्तमं रयिमश्नवत् प्राप्नोति ।

मूल स्तुति

अ॒ग्निः पूर्वे॑भि॒र्ऋषि॑भि॒रीड्यो॒ नूत॑नैरु॒त । स दे॒वाँ एह व॑क्षति ॥ ४ ॥ ऋ० १ । १ । १ । २ ॥

व्याख्यान—हे सब मनुष्यों के स्तुति करने योग्य ! ईश्वराग्ने ! "पूर्वेभिः" विद्या पढ़े हुए प्राचीन "ऋषिभिः" मन्त्रार्थ देखने वाले विद्वान् और "नूतनैः" वेदार्थ पढ़नेवाले नवीन ब्रह्मचारियों से "ईड्यः" स्तुति के योग्य "उत" और जो हम लोग मनुष्य विद्वान् वा मूर्ख हैं उनसे भी अवश्य आप ही स्तुति के योग्य हो। सो स्तुति को प्राप्त हुए आप हमारे और सब संसार के सुख के लिये दिव्यगुण अर्थात् विद्यादि को कृपा से प्राप्त करो। आप ही सब के इष्टदेव हो ॥ ४ ॥

पदार्थः—(अग्निः) सब मनुष्यों के स्तुति करने योग्य ईश्वर (पूर्वेभिः) विद्या पढ़े हुये प्राचीन (ऋषिभिः) मन्त्रार्थ देखने वाले विद्वानों से (ईड्यः) स्तुति के योग्य (नूतनैः) वेदार्थ पढ़ने वाले नवीन ब्रह्मचारियों से (उत) और (सः) स्तुति को प्राप्त हुये आप (देवान्) दिव्य गुण अर्थात् विद्यादि को (इह) सब संसार के सुख के लिये (आवक्षति) कृपा से प्राप्त करो ॥

अन्वयः—योऽयमग्निः पूर्वेभिरुत नूतनैर्ऋषिभिरीड्योऽस्ति स एह देवान् वक्षति समन्तात् प्रापयतु ॥

मूल स्तुति

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः । देवो देवेभिरागमत् ॥ ५ ॥ ऋ० १ । १ । १ । ५ ॥

व्याख्यान–हे सर्वदृक्=सब को देखनेवाले ! "क्रतुः" सब जगत् के जनक "सत्यः" अविनाशी अर्थात् कभी जिसका नाश नहीं होता "चित्रश्रवस्तमः" आश्चर्य्यश्रवणादि, आश्चर्य्यगुण, आश्चर्य्यशक्ति, आश्चर्य्यरूपवान् और अत्यन्त उत्तम आप हो । जिन आपके तुल्य या आप से बड़ा कोई नहीं है । हे जगदीश ! "देवेभिः" दिव्यगुणों के सह वर्त्तमान हमारे हृदय में आप प्रकट हों, सब जगत् में भी प्रकाशित हों, जिससे हम और हमारा राज्य दिव्यगुणयुक्त हो । वह राज्य आपका ही है, हम तो केवल आप के पुत्र तथा भृत्यवत् हैं ॥ ५ ॥

पदार्थः—(अग्निः) हे जगदीश/सब जगत् में प्रकाशित (होता) [जगत् की उत्पत्ति-प्रलय करने वाले] (कविक्रतुः) कविः= हे सर्वदृक् ! सबको देखने वाले ! क्रतुः=सब जगत् के जनक ! (सत्यः) अविनाशी (चित्रश्रवस्तमः) आश्चर्य श्रवणादि, आश्चर्यगुण आश्चर्यशक्ति, आश्चर्यरूपवान् और अत्यन्त उत्तम (देवः) हम और हमारा राज्य दिव्यगुण युक्त (देवेभिः) दिव्यगुणों के सह वर्त्तमान (आगमत्) हमारे हृदय में आप प्रकट हो ॥

अन्वयः—यः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः कविक्रतुः होता देवोऽग्निः परमेश्वरो भौतिकश्चास्ति स देवेभिः सहागमत् ॥

मूल प्रार्थना

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि । तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः ॥६॥

ऋ० १ । १ । १ । ६ ॥

व्याख्यान—हे "अङ्ग" मित्र ! जो आपको आत्मादि दान करता है, उसको "भद्र" व्यावहारिक और पारमार्थिक सुख अवश्य देते हो। हे "अंगिरः" प्राणप्रिय ! यह आपका सत्यव्रत है कि स्व-भक्तों को परमानन्द देना, यही आपका स्वभाव हम को अत्यन्त सुखकारक है। आप मुझ को ऐहिक और पारमार्थिक इन दोनों सुखों का दान शीघ्र दीजिये, जिससे सब दुःख दूर हों। हमको सदा सुख ही रहे ॥ ६ ॥

पदार्थः—(यद्) जो (अङ्ग) हे मित्र ! (दाशुषे) आपको आत्मादि दान करता है उसको (त्वम्) आप (अग्ने) [हे जगदीश्वर !] (भद्रम्) व्यावहारिक और पारमार्थिक सुख (करिष्यसि) देते हो (तव) आपका (इत्) अवश्य (तत्) यह (सत्यम्) सत्य व्रत है (अङ्गिरः) हे प्राण प्रिय ! ॥

अन्वयः— हे अङ्गिरोऽअङ्गाग्ने त्वं यस्मात् दाशुषे भद्रं करिष्यसि करोषि। तस्मात् तवेत् तवैवेदं सत्यं व्रतमस्ति ॥

मूल स्तुति

वायवायाहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः। तेषां पाहि श्रुधी हवम् ॥ ७ ॥ ऋ० १ । १ । ३ । १ ॥

व्याख्यान—हे अनन्तबल परेश वायो दर्शनीय! आप अपनी कृपा से ही हम को प्राप्त हो। हम लोगों ने अपनी अल्पशक्ति से सोम (सोमवल्ल्यादि) ओषधियों का उत्तम रस सम्पादन किया है, और जो कुछ भी हमारे श्रेष्ठ पदार्थ हैं वे आपके लिये "अरङ्कृताः" अलङ्कृत अर्थात् उत्तम रीति से हमने बनाये हैं, और वे सब आपके समर्पण किये गये हैं। उनको आप स्वीकार करो (सर्वात्मा से पान करो)।

हम दीनों की दीनता सुनकर जैसे पिता को पुत्र छोटी चीज समर्पण करता है, उस पर पिता अत्यन्त प्रसन्न होता है, वैसे आप हम पर होओ ॥ ७ ॥

पदार्थः—(वायो) हे अनन्तबलपरेश! (आयाहि) अपनी कृपा से ही हम को प्राप्त हो (दर्शत) हे दर्शनीय! (इमे) वे (सोमाः) सोम (सोमवल्ल्यादि) ओषधियों का उत्तम रस/श्रेष्ठ पदार्थ (अरङ्-कृताः) अलंकृत अर्थात् उत्तम रीति से बनाये पदार्थ (तेषाम्) उनको (पाहि) स्वीकार करो (सर्वात्मा से पान करो) (श्रुधी) सुनकर प्रसन्न होओ (हवम्) पुकार को ॥

अन्वयः—हे दर्शत वायो जगदीश्वर त्वमायाहि येन त्वये मे सोमा अरङ्कृताः अलंकृताः सन्ति तेषां तान् पदार्थान् पाहि। अस्माक हवं श्रधि ॥

मूल प्रार्थना

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ ८ ॥ ऋ० १ । १ । ६ । १० ॥

व्याख्यान—हे वाक्पते, सर्व विद्यामय ! हमको आपकी कृपा से "सरस्वती" सर्वशास्त्रविज्ञानयुक्त वाणी प्राप्त हो, "वाजेभिः" तथा उत्कृष्ट, अन्नादि के साथ वर्त्तमान, "वाजिनीवती" सर्वोत्तम क्रिया विज्ञानयुक्त, "पावका" पवित्रस्वरूप और पवित्र करनेवाली सत्यभाषणमय, मङ्गलकारक वाणी आपकी प्रेरणा से प्राप्त होके आप के अनुग्रह से परमोत्तम बुद्धि के साथ वर्त्तमान "वसुः" निधिस्वरूप यह वाणी "यज्ञं वष्टु" सर्वशास्त्रबोध और पूजनीयतम आप के विज्ञान की कामनायुक्त सदैव हो । जिससे हमारी सब मूर्खता नष्ट हो और हम महापाण्डित्ययुक्त हों ॥ ८ ॥

पदार्थः—(पावका) पवित्र स्वरूप और पवित्र करने वाली सत्यभाषणमय मङ्गलकारक वाणी (नः) हम को (सरस्वती) सर्वशास्त्र विज्ञानयुक्त वाणी (वाजेभिः) सर्वोत्कृष्ट अन्नादि के साथ (वाजिनीवती) सर्वोत्तम क्रिया विज्ञानयुक्त वाणी (यज्ञम्) सर्वशास्त्र बोध और पूजनीयतम आपके विज्ञान की (वष्टु) कामनायुक्त सदैव हो (धिया) परमोत्तम बुद्धि के साथ (वसुः) निधिस्वरूप वाणी ॥

अन्वयः—या वाजेभिर्वाजिनीवती धियावसुः पावका सरस्वती वागस्ति साऽस्माकं शिल्पविद्यामहिमानं कर्म च यज्ञं वष्टु तत्प्रकाशयित्री भवतु ॥

मूल स्तुति

पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्य्याणाम् । इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ ९ ॥ ऋ० १ । १ । ९ । २ ॥

व्याख्यान—हे परात्पर परमात्मन् ! आप "पुरूतमम्" अत्यन्तोत्तम और सर्वशत्रुविनाशक हो तथा बहुविध जगत् के पदार्थों के ईशान (स्वामी) और उत्पादक हो । "वार्य्याणाम्" वर, वरणीय परमानन्द मोक्षादि पदार्थों के भी ईशान हो, "सोमे" और उत्पत्ति-स्थान संसार आप से उत्पन्न होने से "इन्द्रम्" परमैश्वर्यवान् आप को (अभिप्रगायत) हृदय में अत्यन्त प्रेम से गावें (यथावत्) स्तुति करें । जिससे आप की कृपा से हम लोगों का भी परमैश्वर्य बढ़ता जाय और परमानन्द को प्राप्त हों ॥ ९ ॥

पदार्थः—(पुरूतमम्) अत्यन्तोत्तम और सर्वशत्रुविनाशक परमात्मा को (पुरूणाम्) बहुविध जगत् के पदार्थों के (ईशानम्) स्वामी और उत्पादक को (वार्याणाम्) वर, वरणीय, परमानन्द मोक्षादि पदार्थों के (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवान् परमात्मा को (सोमे) उत्पत्ति स्थान संसार (सचा) अत्यन्त प्रेम से (सुते) आप से उत्पन्न होने से [अनु०—अभिप्रगायत] हृदय में गावें ॥

अन्वयः—हे सखायो विद्वांसो वार्याणां पुरूतममीशानं पुरूणामिन्द्रमभिप्रगायत ये सुते सोमे सचाः सन्ति तान् सर्वोपकाराय यथायोग्यमभिप्रगायत ॥

मूल प्रार्थना

तमीशा॑नं॒ जग॑तस्त॒स्थुष॒स्पतिं॑ धियं जि॒न्वमव॑से हूमहे व॒यम् ।
पू॒षा नो॒ यथा॒ वेद॑सा॒मस॑द्वृ॒धे र॑क्षि॒ता पा॒युरद॑ब्धः स्व॒स्तये॑ ॥
१० ॥ ऋ० १ । ६ । १५ । ५ ॥

व्याख्यान—हे सर्वाधिस्वामिन् ! आप ही चर और अचर जगत् के ईशान (रचनेवाले) हो, "धियं जिन्वम्" सर्वविद्यामय विज्ञान-स्वरूप बुद्धि को प्रकाशित करने वाले प्रीणनीयस्वरूप "पूषा" सब के पोषक हो, उन आप का हम "नः अवसे" अपनी रक्षा के लिये "हूमहे" आह्वान करते हैं । "यथा" जिस प्रकार से आप हमारे विद्यादि धनों की वृद्धि वा रक्षा के लिये "अदब्धः, रक्षिता" निरालस रक्षा करने में तत्पर हो वैसे ही कृपा करके आप "स्वस्तये" हमारी स्वस्थता के लिये "पायुः" निरन्तर रक्षक (विनाशनिवारक) हो । आप से पालित हम लोग सदैव उत्तम कामों में उन्नति और आनन्द को प्राप्त हों ॥१०॥

पदार्थः—(तम्) उन आपका (ईशानम्) रचने वाले का (जगतः) चर जगत् के (तस्थुषः) अचर जगत् के (पतिम्) सर्वाधि-स्वामी का (धियम्) सर्वविद्यामय, विज्ञानस्वरूप बुद्धि को प्रकाशित करने वाले को (जिन्वम्) प्रीणनीय स्वरूप का (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (हूमहे) आह्वान करते हैं । (वयम्) हम (पूषा) सबके पोषक (नः) हमारे (यथा) जिस प्रकार से (वेदसाम्) विद्यादि धनों की (असद्) हो (वृधे) वृद्धि वा रक्षा के लिये (रक्षिता) रक्षा करने में तत्पर (पायुः) निरन्तर रक्षक (पाप-निवारक) (अदब्धः) निरालस (स्वस्तये) हमारी स्वस्थता के लिये ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! यथा पूषा नोऽस्माकं वेदसां वृधे यो रक्षिता स्वस्तयेऽदब्धः पूषा पायुरसत्तथा त्वं भव यथा वयमवसे तं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमीशानं परमात्मानं हूमहे तथैतं-त्वमप्याह्वय ॥ ●

मूल स्तुति

अतो॑ दे॒वा अ॑वन्तु नो॒ यतो॒ विष्णु॑र्वि॒चक्र॒मे । पृ॒थि॒व्याः स॒प्त धाम॑भिः ॥ ११ ॥ ऋ० १ । २ । ७ । १६ ॥

व्याख्यान—हे "देवाः" विद्वानो ! "विष्णुः" सर्वत्र व्यापक परमेश्वर ने सब जीवों को पाप तथा पुण्य का फल भोगने और सब पदार्थों के स्थित होने के लिये, पृथिवी से लेके सप्तविध लोक "धामभिः" अर्थात् ऊँचे नीचे स्थानों से संयुक्त बनाये तथा गायत्र्यादि सात छन्दों से विस्तृत विद्यायुक्त वेद को भी बनाया उन लोकों के साथ वर्त्तमान व्यापक ईश्वर ने "यतः" जिस सामर्थ्य से सब लोकों को रचा है "अतः" (सामर्थ्यात्) उस सामर्थ्य से हम लोगों की रक्षा करे ।

हे विद्वानो ! तुम लोग भी उसी विष्णु के उपदेश से हमारी रक्षा करो । कैसा है वह विष्णु ? जिस ने इस सब जगत् को "विचक्रमे" विविध प्रकार से रचा है उसकी नित्य भक्ति करो ॥ ११ ॥

पदार्थः—(अतः) उस सामर्थ्य से (देवाः) हे विद्वानो ! (अवन्तु) रक्षा करें (नः) हम लोगों की (यतः) जिस सामर्थ्य से (विष्णुः) सर्वत्र व्यापक परमेश्वर ने (विचक्रमे) विस्तृत विद्यायुक्त वेद को बनाया/लोकों को रचा है/सब जगत् को विविध प्रकार से रचा है (पृथिव्याः) पृथिवी से ले के (सप्त) सप्तविध/सात (धामभिः) लोक, ऊँचे नीचे स्थानों से संयुक्त/गायत्री आदि (सात) छन्दों से ॥

अन्वयः—यतोऽयं विष्णुर्जगदीश्वरः पृथिवीमारभ्य प्रकृतिपर्यन्तैः सप्तभिर्धामभिः सह वर्त्तमानाँल्लोकान् विचक्रमे रचितवान् अत एतेभ्यो देवा विद्वांसो नोऽस्मान् अवन्तु=एतद्विद्यामवगमयन्तु ॥

मूल प्रार्थना

पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः । पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य ॥ १२ ॥ ऋ० १ । ३ । १० । १५ ॥ 9/36/15

व्याख्यान—हे सर्वशत्रुदाहकाग्ने परमेश्वर ! राक्षस, हिंसाशील, दुष्टस्वभाव देहधारियों से "नः" हमारी "पाहि" पालना करो। "धूर्तेरराव्णः" कृपण जो धूर्त उस मनुष्य से भी हमारी रक्षा करो। जो हम को मारने लगे तथा जो मारने की इच्छा करता है, हे महातेज बलवत्तम ! उन सब से हमारी रक्षा करो ॥ १२ ॥

पदार्थः—(पाहि) पालन करो (नः) हमारी (अग्ने) हे सर्वशत्रुदाहकाग्ने ! परमेश्वर ! (रक्षसः) राक्षस, हिंसाशील, दुष्टस्वभाव देहधारियों से (पाहि) रक्षा करो (धूर्तेः) धूर्त मनुष्य से (अराव्णः) कृपण मनुष्य से (पाहि) रक्षा करो (रीषतः) मारने वाले मनुष्य से (उत+वा) तथा (जिघांसतः) जो मारने की इच्छा करता है उस मनुष्य से (बृहद्भानो) हे महातेज ! (यविष्ठ्य) हे बलवत्तम ! ॥

अन्वयः—हे बृहद्भानो यविष्ठ्याग्ने सर्वशत्रुदाहकाग्ने परमेश्वर ! त्वं धूर्तेरराव्णो रक्षसो नः पाहि। रिषतः पापाचाराज्जनात् पाहि। उत वा जिघांसतः पाहि ॥

हे महा तेजस्विन महाबलिन ज्ञानरूप प्रभो ! हमें राक्षसों से बचाओ धूर्त और कृपणों से बचाओ पीड़ा देने वाले और मारने की इच्छा रखने वालों से रक्षा करो।

मूल स्तुति

त्वम॒स्य पा॒रे रज॑सो॒ व्यो॑मनः॒ स्वभू॑त्योजा॒ अव॑से धृषन्मनः ।
च॒कृषे भूमिं॑ प्रति॒मान॒मोज॑सो॒पः स्वः॑ परि॒भूरे॒ष्या दिव॑म् ॥ १३ ॥
ऋ० १ । ४ । १४ । १२ ॥

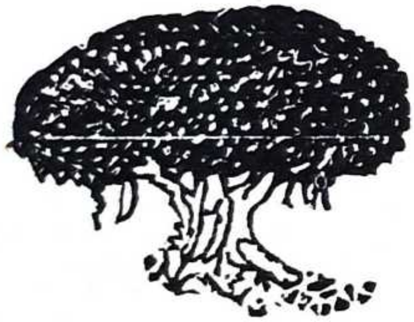
व्याख्यान—हे परमैश्वर्यवन् परमात्मन्! आकाश लोक के पार में तथा भीतर, अपने ऐश्वर्य और बल से विराजमान होके दुष्टों के मन को धर्षण=तिरस्कार करते हुए सब जगत् तथा विशेष हम लोगों के "अवसे" सम्यक् रक्षण के लिये "त्वम्" आप सावधान हो रहे हो। इससे हम निर्भय होके आनन्द कर रहे हैं। किञ्च—

"दिवम्" परमाकाश "भूमिम्" भूमि तथा "स्वः" सुख विशेष मध्यस्थ लोक इन सबों को अपने सामर्थ्य से ही रच के यथावत् धारण कर रहे हो। "परिभूः एषि" सब पर वर्त्तमान और सब को प्राप्त हो रहे हो। "आदिवम्" द्योतनात्मक सूर्यादि लोक "अपः" अन्तरिक्ष-लोक और जल इन सब के प्रतिमान (परिमाण) कर्त्ता आप ही हो, तथा आप अपरिमेय हो। कृपा करके हमको अपना तथा सृष्टि का विज्ञान दीजिये ॥ १३ ॥

पदार्थः—(त्वम्) आप (अस्य) सब जगत् के तथा विशेष हम लोगों के (पारे) पार में तथा भीतर (रजसः) लोक के (व्योमनः) आकाश के (स्वभूत्योजाः) अपने ऐश्वर्य और बल से (अवसे) सम्यक् रक्षण के लिये (धृषत्) धर्षण करते हुये (मनः) दुष्टों के मन को (चकृषे) रचके (यथावत्) धारण कर रहे हो (भूमिम्) भूमि को (प्रतिमानम्) प्रतिमान (परिमाण) कर्त्ता (ओजसः) अपने सामर्थ्य से (अपः) अन्तरिक्ष लोक और जल के (स्वः) सुख विशेष, मध्यस्थ

लोक को (परिभू:) सब पर वर्त्तमान (एषि) सबको प्राप्त हो रहे हो (आदिवम्) द्योतनात्मक सूर्यादि लोक के (दिवम्) परमाकाश को ॥

अन्वय:—हे धृषन्मनो जगदीश्वर ! यः परिभूः स्वभूत्योजास्त्वमवसेऽस्य संसारस्य रजसो व्योमनः पारेऽप्येषि त्वं सर्वेषामोजसः पराक्रमस्य स्वभूर्मिं चाप्रतिमानमाचकृषे समन्तात् कृतवानसि तं (सर्वे) वयमुपास्महे ॥



मूल प्रार्थना

विजांनाह्यार्यान् ये च दस्यंवो बर्हिष्मंते रन्धया शासंदव्रतान् । शाकीं भव यजंमानस्य चोदिता विश्वेत्ता तें सधमादेंषु चाकन ॥ १४ ॥ ऋ० १ । ४ । १० । ८ ॥

व्याख्यान—हे यथायोग्य सब को जानने वाले ईश्वर ! आप "आर्यान्" विद्या धर्मादि उत्कृष्ट स्वभावाचरणयुक्त आर्यों को जानो "ये च दस्यवः" और जो नास्तिक, डाकू, चोर, विश्वासघाती, मूर्ख, विषयलम्पट, हिंसादि दोषयुक्त, उत्तम कर्म्म में विघ्न करनेवाले, स्वार्थी, स्वार्थसाधन में तत्पर, वेदविद्याविरोधी, अनार्य (अनाड़ी) मनुष्य "बर्हिष्मते" सर्वोपकारक यज्ञ के विध्वंस करनेवाले हैं; इन सब दुष्टों को आप "रन्धय" (समूलान् विनाशय) मूलसहित नष्ट कर दीजिये; और "शासदव्रतान्" ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासादि धर्म्मानुष्ठानव्रतरहित वेदमार्गोच्छेदक अनाचारियों का यथायोग्य शासन करो (शीघ्र उन पर दण्ड निपातन करो); जिससे वे भी शिक्षायुक्त होके शिष्ट हों; अथवा उनका प्राणान्त हो जाय, किंवा हमारे वश में ही रहें ।

"शाकी" तथा जीव को परम शक्तियुक्त शक्ति देने और उत्तम कामों में प्रेरणा करने वाले हो; आप हमारे दुष्ट कामों से निरोधक हो; मैं भी "सधमा०" उत्कृष्ट स्थानों में निवास करता हुआ "विश्वेत्ता-ते" तुम्हारी आज्ञानुकूल सब उत्तम कर्म्मों की "चाकन" कामना करता हूँ; सो आप पूरी करें ॥ १४ ॥

पदार्थः—(विजानीहि) जानो (आर्यान्) विद्या धर्मादि उत्कृष्ट स्वभावाचरण युक्त आर्यों को (ये) जो (च) और (दस्यवः) नास्तिक, डाकू, चोर आदि को (बर्हिष्मते) सर्वोपकारक यज्ञ के विध्वंस करने वाले को (रन्धय) मूल सहित नष्ट कर दीजिये (शासद्) यथायोग्य

शासन करो (शीघ्र उन पर दण्डनिपातन करो) (अव्रतान्) ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास आदि धर्मानुष्ठान, व्रतरहित, वेद-मार्गोच्छेदक, अनाचारी इनका, (शाकी) परमशक्तियुक्त, शक्ति देने वाला (भव) हो (यजमानस्य) जीव को (चोदिता) उत्तम कामों में प्रेरणा करने वाला (विश्वा+इत्+ता) सब उत्तम कर्मों की (ते) तुम्हारी आज्ञानुकूल (सधमादेषु) उत्कृष्ट स्थानों में (चाकन) कामना करता हूँ ॥

अन्वयः—हे मनुष्य ! त्वं बर्हिष्मत आर्यान् विजानीहि ये दस्यवः सन्ति तांश्च विदित्वा रन्धयाऽव्रतान् शासत् यजमानस्य चोदिता सन् शाकी भव यतस्ते तवोपदेशेन सङ्गेन वा सधमादेषु ता तानि विश्वा विश्वान्येतानि सर्वाणि कर्माणीदेवाहं चाकन ॥



मूल स्तुति

न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः। नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक् ॥ १५ ॥ ऋ० १ । ४ । १४ । १४ ॥

व्याख्यान—हे परमैश्वर्य्ययुक्तेश्वर! आप इन्द्र हो। हे मनुष्यो! जिस परमात्मा का अन्त इतना है यह न हो, उसकी व्याप्ति का परिच्छेद (इयत्ता) परिमाण कोई नहीं कर सकता, तथा दिव अर्थात् सूर्य्यादिलोक सर्वोपरि आकाश तथा पृथिवी मध्य निकृष्टलोक ये कोई उसके आदि अन्त को नहीं पाते क्योंकि "अनुव्यचः" वह सब के बीच में अनुस्यूत (परिपूर्ण) हो रहा है, तथा "न सिन्धवः" अन्तरिक्ष में जो दिव्यजल तथा सब लोक सो भी अन्त नहीं पा सकते। "नोत स्ववृष्टिं मदे" वृष्टिप्रहार से युद्ध करता हुआ वृत्र (मेघ) तथा बिजुली गर्जन आदि भी ईश्वर का पार नहीं पा सकते*।

हे परमात्मन्! आप का पार कौन पा सके? क्योंकि "एकः" एक (अपने से भिन्न सहाय रहित) स्वसामर्थ्य से ही "विश्वम्" सब जगत् को "आनुषक्" आनुषक्त अर्थात् उसमें व्याप्त होते और "चकृषे" (कृतवान्) आप ने ही उत्पन्न किया है; फिर जगत् के पदार्थ आपका पार कैसे पासकें; तथा (अन्यत्) आप जगत्रूप कभी नहीं बनते, न अपने में से जगत् को रचते हो किन्तु अनन्त अपने सामर्थ्य से ही जगत् का रचन, धारण और प्रलय यथाकाल में करते हो। इससे आपका सहाय हम लोगों को सदैव है ॥ १५ ॥

पदार्थः—(न) नहीं (यस्य) जिस परमात्मा का (द्यावा-

* जैसे कोई मद में मग्न होके रणभूमि में युद्ध करे, वैसे मेघ का दृष्टान्त जानना।

पृथिवी) दिव अर्थात् सूर्यादि लोक, सर्वोपरि आकाश तथा पृथिवी, मध्य निकृष्ट लोक (अनुव्यचः) सबके बीच में अनुस्यूत (परिपूर्ण) (न) नहीं (सिन्धवः) अन्तरिक्ष में जो दिव्य जल (रजसः) सब लोक (अन्तम्) अन्त, व्याप्ति का परिच्छेद (इयत्ता) परिमाण को/आदि अन्त को/पार को (आनशुः) पा सकते हैं (न) नहीं (उत) और (स्ववृष्टिम्) वृष्टिप्रहार से (मदे) मेघ, तथा बिजुली गर्जन आदि (अस्य) ईश्वर का (युध्यतः) युद्ध करता हुआ (एकः) सहाय रहित (अन्यत्) अपने से भिन्न (चकृषे) उत्पन्न किया है (विश्वम्) सब जगत् को (आनुषक्) अनुषक्त अर्थात् व्याप्त ॥

अन्वयः—यस्य रजसः परमेश्वरस्याऽनुव्यचोऽनुगताया अनन्ताया व्याप्तेर्द्यावापृथिवीचन्द्रादयश्चान्तं नानशुः न व्याप्नुवन्ति नोतापि सिन्धवो व्याप्नुवन्ति । हे परमात्मँस्त्वं यथा स्ववृष्टिं प्रतिमदे युध्यतो मेघस्य सूर्यस्याग्रे विजयो न भवति तथैकोऽसहायोऽद्वितीयः सन्नन्यद् विश्वमानुषक् चकृषे कृतवानसि तस्माद् भवान् उपास्योऽस्ति ॥

मूल प्रार्थना

ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना विश्वं समत्रिणं दह। कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः॥ १६॥

ऋ० १। ३। १०। १४॥

व्याख्यान—हे सर्वोपरि विराजमान परब्रह्म! आप ऊर्ध्व सब से उत्कृष्ट हो, हम को कृपा से उत्कृष्ट गुणवाले करो तथा ऊर्ध्व-देश में हमारी रक्षा करो।

हे सर्वपापप्रणाशकेश्वर! हमको "केतुना" विज्ञान अर्थात् विविध विद्यादान देके "अंहसः" अविद्यादि महापाप से "नि पाहि" (नितरां पाहि) सदैव अलग रक्खो तथा "विश्वम्" इस सकल संसार का भी नित्य पालन करो।

हे सत्यमित्र न्यायकारिन्! जो कोई प्राणी "अत्रिणम्" हम से शत्रुता करता है उसको और काम क्रोधादि शत्रुओं को आप "सन्दह" सम्यक् भस्मीभूत करो (अच्छे प्रकार जलाओ)।

"कृधी न ऊर्ध्वान्" हे कृपानिधे! हम को विद्या, शौर्य्य, धैर्य, बल, पराक्रम, चातुर्य, विविधधन, ऐश्वर्य, विनय, साम्राज्य, सम्मति, सम्प्रीति, स्वदेशसुखसंपादनादि गुणों में सब नर देहधारियों से अधिक उत्तम करो तथा "चरथाय, जीवसे" सब से अधिक आनन्द, भोग, सब देशों में अव्याहतगमन (इच्छानुकूल जाना आना), आरोग्य, देह, शुद्ध मानसबल और विज्ञान इत्यादि के लिये हम को उत्तमता और अपनी पालनायुक्त करो। "विदा" विद्यादि उत्तमोत्तम धन "देवेषु" विद्वानों के बीच में प्राप्त करो अर्थात् विद्वानों के मध्य में भी उत्तम प्रतिष्ठायुक्त सदैव हम को रक्खो॥ १६॥

पदार्थः—(ऊर्ध्वः) हे सर्वोपरि विराजमान परब्रह्म! सब से

उत्कृष्ट/उत्कृष्ट गुणवाला/ऊर्ध्व देश (नः) हमको/हमारी (पाहि) रक्षा करो (अंहसः) अविद्यादि महापाप से (केतुना) विज्ञान अर्थात् विद्या-दान देके (निपाहि) सदैव अलग रखो/नित्यपालन करो (विश्वम्) सकल संसार का (अत्रिणम्) जो कोई प्राणी हमसे शत्रुता करता है उसको/काम क्रोध आदि शत्रुओं को (सन्दह) सम्यक् भस्मीभूत करो/अच्छे प्रकार जलाओ (कृधी) करो (नः) हम को (ऊर्ध्वान्) विद्यादि गुणों में सब नरदेहधारियों में अधिक उत्तम (चरथाय) सब से अधिक आनन्द भोग, सब देशों में अव्याहतगमन (इच्छानुकूल जाना आना) के लिये (जीवसे) आरोग्य, देह, शुद्ध-मानस बल और विज्ञान इत्यादि के लिये (विदा) विद्यादि उत्तमोत्तम धन (देवेषु) विद्वानों के बीच में (नः) हम को (दुवः) प्राप्त करो/उत्तम प्रतिष्ठायुक्त सदैव रखो।

अन्वयः—हे सर्वोपरि विराजमान परब्रह्म। त्वमूर्ध्वोऽसि, नोऽस्मानपि चरथायोर्ध्वान् कृधि। हे सर्वपापप्रणाशकेश्वर! त्वं केतुना विज्ञानदानेन नोंऽहसो निपाहि। हे सत्यमित्र न्यायकारिन्! त्वं विश्वमत्रिणं शत्रुं सन्दह। देवेषु जीवसे नो दुवो विदाः॥

मूल स्तुति

अदि॑ति॒र्द्यौरदि॑तिर॒न्तरि॑क्ष॒मदि॑तिर्मा॒ता स पि॒ता स पु॒त्रः ।
विश्वे॑ दे॒वा अदि॑तिः॒ पञ्च॒जना॒ अदि॑तिर्जा॒तमदि॑ति॒र्जनि॑त्वम् ॥
१७ ॥ ऋ० १ । ६ । १६ । १० ॥

व्याख्यान—हे त्रैकाल्याबाधेश्वर ! "अदितिर्द्यौ:" आप सदैव विनाश रहित तथा स्वप्रकाशस्वरूप हो "अदितिरन्तरिक्षम्" अविकृत (विकार को न प्राप्त) और सब के अधिष्ठाता हो "अदितिर्माता" आप प्राप्त मोक्ष जीवों को अविनश्वर (विनाश रहित) सुख देने और अत्यन्त मान करने वाले हो "स पिता" सो अविनाशीस्वरूप हम सब लोगों के पिता (जनक) और पालक हो और "स पुत्र:" सो ईश्वर आप मुमुक्षु धर्मात्मा विद्वानों को नरकादि दुःखों से पवित्र और त्राण (रक्षण) करने वाले हो "विश्वे देवा अदिति:" सब दिव्यगुण (विश्व का धारण, रचन, मारण, पालन आदि कार्यों को करनेवाले) आप अविनाशी परमात्मा ही हैं "पञ्चजना अदिति:" पंचप्राण जो जगत् के जीवन हेतु वे भी आप के रचे और आप के नाम भी हैं "जातमदिति:" वही एक चेतन ब्रह्म आप सदा प्रादुर्भूत हैं, और सब कभी प्रादुर्भूत कभी अप्रादुर्भूत (अविनाशभूत) भी हो जाते हैं "अदितिर्जनित्वम्" वे ही अविनाशी स्वरूप ईश्वर आप सब जगत् के (जनित्वम्) जन्म का हेतु हैं और कोई नहीं* ॥ १७ ॥

पदार्थः—(अदिति:) सदैव विनाश रहित (द्यौ:) सदैव स्वप्रकाश स्वरूप (अदिति:) अविकृत=विकार को न प्राप्त (अन्तरिक्षम्) सब का अधिष्ठाता (अदिति:) अविनश्वर=विनाशरहित (माता)

---

* ये सब नाम दिव आदि अन्य वस्तुओं के भी होते हैं परन्तु यहाँ ईश्वराभिप्रेत से अर्थ किया, सो सप्रमाण जानना चाहिये ।

सुख देने आर मान करले वाला (सः) सो (पिता) सब का पिता= जनक और पालक (सः) सो (पुत्रः) नरकादि दुःखों से पवित्र और त्राण=रक्षा करने वाला (विश्वे) सब (देवाः) दिव्य गुणों वाला (विश्व का धारण, रचन, मारण, पालन आदि कार्य करने वाला (अदितिः) अविनाशी (पञ्च) पांच प्राण (जनाः) जगत् के जीवनहेतु (अदितिः) ईश्वर के रचे और ईश्वर के नाम (जातम्) प्रादुर्भूत (अदितिः) चेतन ब्रह्म (जनित्वम्) जन्म का हेतु ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः! युष्माभिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माताऽदितिः स पिता स पुत्रश्चादितिर्विश्वे देवा अदितिः पञ्चेन्द्रियाणि जनाश्च तथा एवं जातमात्रं कार्यं जनित्वं जन्यञ्च सर्वमदितिरेवेति वेदितव्यम् ॥

मूल प्रार्थना

ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान्। अर्यमा देवैः सजोषाः ॥ १८ ॥ ऋ० १।६।१७।१॥

व्याख्यान—हे महाराजाधिराज परमेश्वर ! आप हमको "ऋजु०" सरल (शुद्ध) कोमलत्वादिगुणविशिष्ट चक्रवर्त्ती राजाओं की नीति को "नयतु" कृपादृष्टि से प्राप्त करो। आप "वरुणः" सर्वोत्कृष्ट होने से वरुण हो, सो हमको वरराज्य, वरविद्या, वरनीति देओ तथा सब के मित्र शत्रुतारहित हो, हम को भी आप मित्रगुणयुक्त न्यायाधीश कीजिये; तथा आप सर्वोत्कृष्ट विद्वान् हो हम को भी सत्य-विद्या से युक्त सुनीति देके साम्राज्याधिकारी सद्यः कीजिये; तथा आप "अर्य्यमा" (यमराज) प्रियाप्रिय को छोड़ के न्याय में वर्त्तमान हो, सब संसार के जीवों के पाप और पुण्यों की यथायोग्य व्यवस्था करने वाले हो, सो हम को भी आप तादृश करें। जिससे "देवैः सजोषाः" आपकी कृपा से विद्वानों वा दिव्यगुणों के साथ उत्तम प्रीति-युक्त आप में रमण और आपका सेवन करने वाले हों।

हे कृपासिन्धो भगवन् ! हम पर सहायता करो जिससे सुनीतियुक्त होके हमारा स्वराज्य अत्यन्त बढ़े ॥ १८ ॥

पदार्थः—(ऋजुनीती) सरल=शुद्ध, कोमलत्वादि गुणविशि[ष्ट] चक्रवर्त्ती राजाओं की नीति (नः) हमको (वरुणः) सर्वोत्कृ[ष्ट] (मित्रः) सबका मित्र शत्रुतारहित (नयतु) प्राप्त करो (विद्वान्) सर्वो[त्]कृष्ट विद्वान् (अर्यमा) यमराज्य=प्रियाप्रिय को छोड़कर न्याय [में] वर्त्तमान (देवैः) विद्वानों वा दिव्यगुणों के साथ वर्त्तमान (सजोषा[ः]) उत्तम प्रीति युक्त, परमेश्वर में रमण और ईश्वर का सेवन कर[ने] वाले ॥

अन्वय:—यथेश्वरो धार्मिकमनुष्यान् धर्मं नयति तथा देवैः सजोषा वरुणो मित्रोऽर्यमा विद्वान् ऋजुनीती नोऽस्मान् धर्मविद्यामार्गं नयतु ॥

मूल प्रार्थना

त्वं सो॑मासि॒ सत्प॑ति॒स्त्वं राजो॒त वृ॑त्र॒हा । त्वं भ॒द्रो अ॑सि॒ क्रतुः॑ ॥ १९ ॥ ऋ० १ । ६ । १९ । ५ ॥

व्याख्यान—हे सोम, राजन् सत्पते परमेश्वर ! तुम सोम= सब का सार निकालनेहारे, प्राप्तस्वरूप, शान्तात्मा हो; तथा सत्पुरुषों का प्रतिपालन करनेवाले हो । तुम्हीं सब के राजा "उत" और 'वृत्रहा" मेघ के रचक, धारक और मारक हो। भद्रस्वरूप, भद्र करने वाले और "क्रतुः" सब जगत् के कर्त्ता आप ही हो ॥ १९ ॥

पदार्थ:—(त्वम्) तुम (सोम) सब का सार निकालने हारे प्राप्त स्वरूप, शान्तात्मा (असि) हो (सत्पतिः) सत्पुरुषों का पालन करने वाले (त्वम्) तुम ही (राजा) सब के राजा (उत) और (वृत्रहा) मेघ के रचक, धारक और मारक (त्वम्) आप ही (भद्रः) भद्रस्वरूप, भद्र करने वाले (असि) हो (क्रतुः) सब जगत् के कर्त्ता ॥

अन्वय: –हे सोम ! यतस्त्वमयं सोमो वा सत्पतिरस्युतापि त्वमयं च वृत्रहा राजासि । अस्ति वा यतस्त्वमयं च भद्रोऽसि भवति वा तस्मात्त्वमयं च विद्वद्भिः सेव्यः ॥

मूल प्रार्थना

त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः । न रिष्येत्त्वावतः सखा ॥ २० ॥ ऋ० १ । ६ । २० । ८ ॥

व्याख्यान—हे सोम राजन्नीश्वर ! तुम "अघायतः" जो कोई प्राणी हम में पापी और पाप करने की इच्छा करने वाले हों "विश्वतः" उन सब प्राणियों से हमारी "रक्ष" रक्षा करो । जिसके आप सगे मित्र हो "न, रिष्येत्" वह कभी विनष्ट नहीं होता, किन्तु हम को आप की सहायता से तिलमात्र भी दुःख वा भय कभी नहीं होगा । जो आप का मित्र और जिसके आप मित्र हो उसको दुःख क्योंकर हो ॥ २० ॥

पदार्थः—(त्वम्) तुम (नः) हमारी (सोम) हे सोम राजन् ईश्वर ! (विश्वतः) सब प्राणियों से (रक्ष) रक्षा करो (राजन्) हे राजन् ईश्वर ! (अघायतः) पापी और पाप करने की इच्छा करने वालों से (न) कभी नहीं (रिष्येत्) विनष्ट होता (त्वावतः) जिसके आप सगे (सखा) मित्र ॥

अन्वयः—हे सोम ! त्वमयं च विश्वतोऽघायतो नोऽस्मान् रक्ष रक्षति वा । हे राजन् ! त्वावतः सखा न रिष्येद् विनष्टो न भवेत् ॥

मूल प्रार्थना

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥ २१ ॥ ऋ० १ । २ । ७ । २० ॥

व्याख्यान—हे विद्वानो और मुमुक्षु जीवो ! विष्णु का जो परम अत्यन्तोत्कृष्ट पद=(पदनीय) सब के जानने योग्य, जिसको प्राप्त हो के पूर्णानन्द में रहते हैं, फिर वहाँ से शीघ्र दुःख में नहीं गिरते, उस पद को "सूरयः" धर्मात्मा, जितेन्द्रिय, सब के हितकारक विद्वान् लोग यथावत् अच्छे विचार से देखते हैं, वह परमेश्वर का पद है; किस दृष्टान्त से कि जैसे आकाश में चक्षु=नेत्र की व्याप्ति वा सूर्य का प्रकाश सब ओर से व्याप्त है, वैसे ही "दिवीव, चक्षुराततम्" परब्रह्म सब जगह में परिपूर्ण एकरस भर रहा है। वही परमपदस्वरूप परमात्मा परमपद है। इसी की प्राप्ति होने से जीव सब दुःखों से छूटता है, अन्यथा जीव को कभी परम सुख नहीं मिलता। इससे सब प्रकार परमेश्वर की प्राप्ति में यथावत् प्रयत्न करना चाहिये ।। २१ ।।

पदार्थः—(तद्) उस (विष्णोः) विष्णु के (परमम्) परम, अत्यन्तोत्कृष्ट (पदम्) पद=पदनीय, जानने योग्य पूर्णानन्द पद को (सदा) यथावत् अच्छे विचार से (पश्यन्ति) देखते हैं (सूरयः) धर्मात्मा, जितेन्द्रिय, सब के हितकारक विद्वान् लोग (दिवि) आकाश में (इव) जैसे (चक्षुः) नेत्र की व्याप्ति वा सूर्य का प्रकाश/परब्रह्म (आततम्) सब ओर से व्याप्त है / सब जगह में परिपूर्ण एक रस भर रहा है ।।

अन्वयः—सूरयो विद्वांसो दिव्याततं चक्षुरिव यद्विष्णोराततं परमं पदमस्ति तत् स्वात्मनि सदा पश्यन्ति ।।

मूल प्रार्थना

स्थि॒रा वः॑ स॒न्त्वायु॑धा परा॒णुदे॑ वी॒ळू उ॒त प्र॑ति॒ष्कभे॑।
यु॒ष्माक॑मस्तु॒ तवि॑षी॒ पनी॑यसी॒ मा मर्त्य॑स्य मा॒यिनः॑ ॥ २२ ॥
ऋ० १ । ३ । १८ । २ ॥

व्याख्यान—(परमेश्वरो हि सर्वजीवेभ्यः आशीर्ददाति) ईश्वर सब जीवों को आशीर्वाद देता है कि हे जीवो ! "वः" (युष्माकम्) तुम्हारे लिये आयुध अर्थात् शतघ्नी (तोप), भुशुण्डी (बन्दूक), धनुष्, बाण, करवाल (तलवार), शक्ति (बरछी) आदि शस्त्र स्थिर और "वीळू" दृढ़ हों। किस प्रयोजन के लिये ? "पराणुदे" तुम्हारे शत्रुओं के पराजय के लिये, जिससे तुम्हारे कोई दुष्ट शत्रु लोग कभी दुःख न दे सकें, "उत, प्रतिष्कभे" शत्रुओं के वेग को थांभने के लिये। "युष्माकमस्तु, तविषी पनीयसी" तुम्हारी बलरूप उत्तम सेना सब संसार में प्रशंसित हो, जिस से तुम से लड़ने को शत्रु का कोई संकल्प भी न हो, परन्तु "मा मर्त्यस्य मायिनः" जो अन्यायकारी मनुष्य है उसको हम आशीर्वाद नहीं देते। दुष्ट, पापी, ईश्वरभक्तिरहित मनुष्य का बल और राज्यैश्वर्यादि कभी मत बढ़ो। उस का पराज्य ही सदा हो।

हे बन्धुवर्गो ! आओ अपने सब मिल के सर्व दुःखों का विनाश और विजय के लिये ईश्वर को प्रसन्न करें। जो अपने को वह ईश्वर आशीर्वाद देवे, जिससे अपने शत्रु कभी न बढ़ें ॥ २२ ॥

पदार्थः—(स्थिराः) स्थिर (वः) तुम्हारे लिये (सन्तु) हों (आयुधा) शतघ्नी=तोप, भुशुण्डी=बंदूक, धनुष-बाण, करवाल=तलवार, शक्ति=बरछी आदि शस्त्र (पराणुदे) शत्रुओं के पराजय के लिये (वीळू) दृढ़ (उत) और (प्रतिष्कभे) शत्रुओं के वेग को

थामने के लिये (युष्माकम्) तुम्हारी (अस्तु) हो (तविषी) बलरूप उत्तम सेना (पनीयसी) प्रशंसित (मा) नहीं (मर्त्यस्य) मनुष्य का (मायिनः) अन्यायकारी। दुष्ट, पापी, ईश्वरभक्तिरहित का ॥

अन्वयः—हे धार्मिकमनुष्याः। व आयुधा शत्रूणां पराणुदे उत प्रतिष्कभे स्थिरा वीळू सन्तु। युष्माकं तविषी सेना पनीयस्यस्तु मायिनो मर्त्यस्य मा सन्तु ॥



मूल स्तुति

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ २३ ॥ ऋ० १ । २ । ७ । १९ ॥

व्याख्यान—हे जीवो ! "विष्णोः" व्यापकेश्वर के किये दिव्य जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय आदि कर्मों को तुम देखो । (प्रश्न) किस हेतु से हम लोग जानें कि व्यापक विष्णु के कर्म्म हैं ? (उत्तर) "यतो व्रतानि पस्पशे" जिससे हम लोग ब्रह्मचर्यादि व्रत तथा सत्यभाषणादि व्रत और ईश्वर के नियमों का अनुष्ठान करने को जीव सुशरीरधारी हो के समर्थ हुए हैं । यह काम उसी के सामर्थ्य से है क्योंकि—"इन्द्रस्य, युज्यः, सखा" इन्द्रियों के साथ वर्त्तमान कर्मों का कर्त्ता, भोक्ता जो जीव इस का वही एक योग्य मित्र है, अन्य कोई नहीं, क्योंकि ईश्वर जीव का अन्तर्यामी है । उससे परे जीव का हितकारी कोई और नहीं हो सकता, इससे परमात्मा से सदा मित्रता रखनी चाहिये ॥ २३ ॥

पदार्थः—(विष्णोः) व्यापक ईश्वर के (कर्माणि) जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय आदि कर्मों को (पश्यत) तुम देखो (यतः) जिससे (व्रतानि) ब्रह्मचर्यादिव्रत तथा सत्यभाषणादि व्रत और ईश्वर के नियमों के अनुष्ठान करने को (पस्पशे) समर्थ हुये हैं (इन्द्रस्य) इन्द्रियों के साथ वर्त्तमान कर्मों के कर्त्ता, भोक्ता जीव का (युज्यः) योग्य (सखा) मित्र ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यूयं य इन्द्रस्य युज्यः सखास्ति यतो जीवो व्रतानि पस्पशे स्पृशति तस्य विष्णोः कर्माणि पश्यत ॥

मूल प्रार्थना

परांणुदस्व मघवन्नमित्रान्त्सुवेदा नो वसूं कृधि । अस्माकं बोध्यविता महाधने भवा वृधः सखींनाम् ॥ २४ ॥

ऋ० ५ । ३ । २१ । २५ ॥

व्याख्यान—हे मघवन् परमैश्वर्यवन् इन्द्र परमात्मन् ! "अमित्रान्" हमारे सब शत्रुओं को "पराणुदस्व" परास्त कर दे । हे दातः ! "सुवेदाः, नो, वसू, कृधि" "अस्माकं, बोध्यविता" हमारे लिये सब पृथिवी के धन सुलभ कर । "महाधने" युद्ध में हमारे और हमारे मित्र तथा सेनादि के "अविता" रक्षक "वृधः" वर्द्धक "भव" आप ही हो, तथा "बोधि" हम को अपने ही जानो ।

हे भगवन् ! जब आप हमारे रक्षक योद्धा होंगे, तभी हमारा सर्वत्र विजय होगा; इसमें संदेह नहीं ।। २४ ।।

पदार्थः—(पराणुदस्व) परास्त कर दे (मघवन्) हे परमैश्वर्यवन् इन्द्र परमात्मन् ! (अमित्रान्) सब शत्रुओं को (सुवेदाः) सुलभ (नः) हमारे लिये (वसू) सब पृथिवी के धन (कृधि) कर (अस्माकम्) हमारे (बोधि) हम को अपने ही जानो (अविता) रक्षक (महाधने) युद्ध में (भव) आप ही हो (वृधः) वर्द्धक (सखीनाम्) हमारे मित्र और सेनादि के ।।

अन्वयः—हे मघवन् राजन् ! सुवेदास्त्वं नोऽस्माकममित्रान् पराणुदस्व नो वसु कृधि । महाधनेऽस्माकं सखीनामविता बोधि वृधो भव ।।

मूल प्रार्थना

शं नो॒ भग॒: शमु॑ न॒: शंसो॑ अस्तु॒ शं न॒: पुर॑न्धि॒: शमु॑ सन्तु॒ राय॑: । शं न॑: स॒त्यस्य॑ सु॒यम॑स्य॒ शंस॒: शं नो॑ अर्य॒मा पु॑रुजा॒तो अ॑स्तु ॥ २५ ॥ ऋ० ५ । ३ । २८ । २ ॥

व्याख्यान—हे ईश्वर ! "भगः" आप और आप का दिया हुआ ऐश्वर्य्य "शं नः" हमारे लिये सुखकारक हो और "शमु, नः, शंसो अस्तु" आप की कृपा से हमारी सुखकारक प्रशंसा सदैव हो । "पुरन्धिः, शमु, सन्तु, रायः" संसार के धारण करने वाले आप तथा वायु प्राण और सब धन आनन्ददायक हों । "शन्नः, सत्यस्य" सत्य यथार्थ धर्म सुसंयम और जिनेन्द्रियादि लक्षणयुक्त जो प्रशंसा (पुण्यस्तुति) सब संसार में प्रसिद्ध है, वह परमानन्द और शान्तियुक्त हमारे लिये हो । "शं, नो, अर्यमा" न्यायकारी आप "पुरुजातः" अनन्तसामर्थ्ययुक्त हमारे कल्याणकारक होओ ॥ २५ ॥

पदार्थः—(शम्) सुखकारक (नः) हमारे लिये (भगः) ईश्वर और उसका दिया ऐश्वर्य (शमु) सुखकारक (नः) हमारी (शंसः) प्रशंसा (अस्तु) सदैव हो (शम्) आनन्ददायक (नः) हमारे लिये (पुरन्धिः) संसार को धारण करने वाला ईश्वर/वायु प्राण (शमु) आनन्ददायक (सन्तु) हों (रायः) सब धन (शम्) शान्तियुक्त (नः) हमारे लिये (सत्यस्य) सत्य यथार्थ धर्म को (सुयमस्य) सुसंयम और जितेन्द्रियादिलक्षणयुक्त की (शंसः) प्रशंसा=पुण्यस्तुति (शम्) कल्याण कारक (नः) हमारे लिये (अर्यमा) न्यायकारी (पुरुजातः) अनन्तसामर्थ्य-युक्त (अस्तु) होओ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा नो भगः शं नः शंसः शमु पुरन्धिः शमस्तु नः रायः शमु सन्तु नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं पुरुजातोऽर्यमा नः शमस्तु तथा वयं प्रयतेमहि ॥ ●

मूल स्तुति

त्वम॑सि प्र॒शस्यो॑ वि॒दथे॑षु सहन्त्य । अग्ने॑ र॒थीर॑ध्व॒राणा॑म्
॥ २६ ॥ ऋ० ५ । ८ । ३५ । २ ॥

व्याख्यान—हे "अग्ने" सर्वज्ञ ! तू ही सर्वत्र "प्रशस्यः" स्तुति करने के योग्य है; अन्य कोई नहीं । "विदथेषु" यज्ञ और युद्धों में आप ही स्तोतव्य हो । जो तुम्हारी स्तुति को छोड़ के अन्य जड़ादि की स्तुति करता है, उसके यज्ञ तथा युद्धों में विजय कभी सिद्ध नहीं होता है । "सहन्त्य" शत्रुओं के समहों के आप ही घातक हो । "रथीः" अध्वरों अर्थात् यज्ञ और युद्धों में आप ही रथी हो । हमारे शत्रुओं के योद्धाओं को जीतने वाले हो, इस कारण से हमारा पराजय कभी नहीं हो सकता ॥ २६ ॥

पदार्थः—(त्वम्) तू ही (असि) है (प्रशस्यः) सर्वत्र स्तुति करने योग्य (विदथेषु) यज्ञ और युद्धों में (सहन्त्य) शत्रुओं के समूहों के घातक (अग्ने) हे सर्वज्ञ ! (रथीः) रथी, शत्रुओं के योद्धाओं को जीतने वाले (अध्वराणाम्) यज्ञ और युद्धों में ॥

अन्वयः—हे अग्ने सर्वज्ञ परमेश्वर ! विदथेषु त्वं प्रशस्योऽसि । हे सहन्त्य ! त्वमध्वराणां रथीरसि ॥

मूल प्रार्थना

तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त ।
शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ २७ ॥
ऋ० ५ । ३ । २७ । २५ ॥

व्याख्यान—हे भगवन् ! "तन्न इन्द्रः" सूर्य "वरुणः" चन्द्रमा "मित्रः" वायु "अग्निः" अग्नि "आपः" जल "ओषधीः" वृक्षादि वनस्थ सब पदार्थ आप की आज्ञा से सुखरूप होकर हमारा सेवन करें ।

हे रक्षक ! "मरुतामुपस्थे" प्राणादि पवनों के गोद में बैठे हुए हम आप की कृपा से "शर्मन्त्स्याम" सुखयुक्त सदा रहें । "स्वस्तिभिः" सब प्रकार के रक्षणों से "यूयं, पात" (आदरार्थं बहुवचनम्) आप हमारी रक्षा करो । किसी प्रकार से हमारी हानि न हो ॥ २७ ॥

पदार्थः—(तत्) वह (नः) हमारा (इन्द्रः) सूर्य (वरुणः) चन्द्रमा (मित्रः) वायु (अग्निः) अग्नि (आपः) जल (ओषधीः) वृक्षादि, (वनिनः) वनस्थ सब पदार्थ (जुषन्त) सेवन करें (मरुताम्) प्राणादि पवनों के (उपस्थे) गोद में (शर्मन्) सुखयुक्त (स्याम) हम सदा रहें (यूयम्) आप (पात) रक्षा करो (स्वस्तिभिः) सब प्रकार के रक्षणों से (सदा) सदा (नः) हमारी ॥

अन्वयः—हे विद्वांसः ! ये वनिन इन्द्रो वरुणो मित्रोऽग्निराप ओषधीश्च नस्सञ्जुषन्त येन यूयं स्वस्तिभिर्नः सदा पात तेषां युष्माकं मरुतामुपस्थे शर्मन् वयं स्थिराः स्याम ॥

———

मूल स्तुति

ऋषि॒र्हि पू॑र्व॒जा अस्येक॒ ईशा॑न॒ ओज॑सा । इन्द्र॑ चोष्कू॒यसे॒ वसु॑ ॥ २८ ॥ ऋ० ५ । ८ । १७ । ४१ ॥

व्याख्यान—हे ईश्वर ! "ऋषिः" सर्वज्ञ "पूर्वजाः" और सब के पूर्वजों के अद्वितीय "ईशानः" ईशनकर्त्ता अर्थात् ईश्वरता करनेहारे ईश्वर, तथा सबसे बड़े प्रलयोत्तरकाल में आप ही रहने वाले "ओजसा" अनन्त पराक्रम से युक्त हो ।

हे इन्द्र महाराजाधिराज ! "चोष्कूयसे वसु" सब धन के दाता शीघ्र कृपा का प्रवाह अपने सेवकों पर कर रहे हो । आप अत्यन्त आर्द्रस्वभाव हो ॥ २८ ॥

पदार्थः—(ऋषिः) सर्वज्ञ (हि) निश्चय से (पूर्वजाः) सबके पूर्वजों के (असि) हो (एकः) अद्वितीय (ईशानः) ईशनकर्त्ता, सब से बड़े, प्रलयोत्तर काल में रहने वाले (ओजसा) अनन्तपराक्रम से युक्त (इन्द्र) हे इन्द्र महाराजाधिराज ! (चोष्कूयसे) दाता हो/अपने सेवकों पर कृपा कर रहे हो (वसु) सब धन के/कृपा का प्रवाह ॥

अन्वयः—हे ईश्वर ! त्वम् हि ऋषिः पूर्वजा असि । ओजसा एक ईशानोऽसि । हे इन्द्र महाराजाधिराज ! त्वं स्वसेवकेभ्यो वसु चोष्कूयसे ॥

मूल प्रार्थना

नेह भ॒द्रं र॑क्ष॒स्विने॒ नाव॒यै नोप॒या उ॒त । गवे॑ च भ॒द्रं धे॒नवे॑ वी॒राय॑ च श्रवस्य॒तेऽने॒हसो॑ व ऊ॒तयः॑ सु ऊ॒तयो॑ व ऊ॒तयः॑ ॥२९॥

ऋ० ६ । ४ । ९ । १२ ॥

व्याख्यान—हे भगवन् ! "रक्षस्विने, भद्रं, नेह" पापी, हिंसक, दुष्टात्मा को इस संसार में सुख मत देना । "नावयै" धर्म से विपरीत चलनेवाले को सुख कभी मत हो, तथा "नोपया, उत" अधर्मी के समीप रहने वाले उसके सहायक को भी सुख नहीं हो । ऐसी प्रार्थना आप से हमारी है कि दुष्ट को सुख कभी न होना चाहिये, नहीं तो कोई जन धर्म में रुचि नहीं करेगा, किन्तु इस संसार में धर्मात्माओं को ही सुख सदा दीजिये । तथा—

हमारी शमदमादियुक्त इन्द्रियाँ, दुग्ध देनेवाली गौ आदि वीरपुत्र और शूरवीर भृत्य, "श्रवस्यते" विद्या, विज्ञान और अन्नाद्यैश्वर्ययुक्त हमारे देश के राजा और धनाढ्य जन तथा इनके लिये "अनेहसः" निष्पाप निरुपद्रव स्थिर दृढ़ सुख हो ।

"व ऊतयो व ऊतयः" (व युष्माकं बहुवचनमादरार्थम्) हे सर्व-रक्षकेश्वर ! आप सर्वरक्षण अर्थात् पूर्वोक्त सब धर्मात्माओं की रक्षा करनेहारे हैं । जिन पर आप रक्षक हो उनको सदैव भद्र कल्याण (परमसुख) प्राप्त होता है; अन्य को नहीं ॥ २९ ॥

पदार्थः—(न) मत (इह) इस संसार में (भद्रम्) सुख (रक्षस्विने) पापी, हिंसक, दुष्टात्मा को (न) मत (अवयै) धर्म से विपरीत चलने वाले को (न) नहीं (उपयै) अधर्मी के समीप रहने वाले, और उसके सहायक को भी (उत) तथा (गवे) शमदमादियुक्त इन्द्रियों के लिए (च) और (भद्रम्) सुख/कल्याण (परमसुख) (धेनवे)

दुग्ध देने वाली गौ आदि के लिये (वीराय) वीरपुत्र के लिए (च) और शूरवीर भृत्य के लिये (श्रवस्यते) विद्या विज्ञान अन्नाद्यैश्वर्य-युक्त हमारे देश के राजा और धनाढ्य जन के लिये (अनेहसः) निष्पाप निरुपद्रव स्थिर दृढ़ सुख (वः) आप (ऊतयः) सर्वरक्षकेश्वर! (सु ऊतयः) सर्वरक्षण (वः) पूर्वोक्त धर्मात्माओं की (ऊतयः) रक्षा करने हारे हैं ॥

अन्वयः—हे भगवन्! इह रक्षस्विने भद्रं न, अवयै भद्रं न, उत उपयै भद्रं न भवतु। अस्माकं गवे धेनवे वीराय श्रवस्यते च भद्रमनेहसश्च भवतु। हे ऊतयः! सर्वरक्षकेश्वर! व ऊतयश्च सु ऊतयः सन्तु ॥

मूल स्तुति

वसुर्वसुपतिर्हि कमस्यग्ने विभावसुः। स्याम ते सुमतावपि ॥ ३० ॥ ऋ० ६ । ३ । ४० । २४ ॥

व्याख्यान—हे परमात्मन् ! आप वसु अर्थात् सब को अपने में वसानेवाले और सब में आप वसनेवाले हो, तथा "**वसुपतिः**" पृथिव्यादि वास हेतुभूतों के पति हो। "कमसि" हे अग्ने विज्ञानानन्द स्वप्रकाशस्वरूप ! आप ही सब के सुखकारक और सुखस्वरूप हो, तथा "विभावसुः" सत्यस्वप्रकाशैकधनमय हो।

हे भगवन् ! ऐसे जो आप उन "ते" आपकी "सुमतौ', अत्यन्तोत्कृष्टज्ञान और परस्पर प्रीति में हम लोग स्थिर हों ॥ ३० ॥

पदार्थः—(वसुः) सबको अपने में बसाने वाले और सब में आप बसने वाले (वसुपतिः) पृथिवी आदि वास-हेतु-भूतों के पति (हि) निश्चय से (कम्) सबके सुखकारक और सुखस्वरूप (असि) हो (अग्ने) हे विज्ञानानन्द स्वप्रकाशस्वरूप (विभावसुः) सत्यस्वप्रकाशैकधनमय (स्याम) हम लोग स्थिर हों (ते) आपकी (सुमतौ) अत्यन्तोत्कृष्ट ज्ञान में (अपि) और परस्पर प्रीति में ॥

अन्वयः—हे परमात्मन् ! त्वं हि वसुर्वसुपतिश्चासि। हे अग्ने विज्ञानानन्दस्वप्रकाशस्वरूप ! त्वं कं विभावसुश्चासि। हे भगवन् ! ते सुमतावपि स्याम ॥

मूल प्रार्थना

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः ।
इतो जातो विश्वमिदं विचष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ।। ३१ ।।
ऋ० १ । ७ । ६ । १ ।।

व्याख्यान—हे मनुष्यो ! जो हमारा तथा सब जगत् का राजा, सब भुवनों का स्वामी "कम्" सब का सुखदाता और "अभिश्री:" सब का निधि (शोभाकारक) है, "वैश्वानरो, यतते, सूर्येण" संसारस्थ सब नरों का नेता (नायक) और सूर्य के साथ वही प्रकाशक है, अर्थात् सब प्रकाशक पदार्थ उसके रचे हैं। "इतो जातो विश्वमिदं विचष्टे" इसी ईश्वर के सामर्थ्य से ही यह संसार उत्पन्न हुआ है, अर्थात् उसने रचा है। वैश्वानरस्य सुमतौ, स्याम" उस वैश्वानर परमेश्वर की सुमतौ अर्थात् सुशोभन (उत्कृष्ट ज्ञान में) हम निश्चित सुखस्वरूप और विज्ञानवाले हों।

हे महाराजाधिराजेश्वर ! आप इस हमारी आशा को कृपा से पूरी करो ।। ३१ ।।

पदार्थः—(वैश्वानरस्य) वैश्वानर परमेश्वर की (सुमतौ) सुशोभन=उत्कृष्ट ज्ञान में (स्याम) हम निश्चित सुखस्वरूप और विज्ञान वाले हों (राजा) हमारा तथा सब जगत् का राजा/स्वामी (हि) और/ही/निश्चित (कम्) सबका सुखदाता (भुवनानाम्) सब भुवनों का (अभिश्री:) सब का निधि (शोभाकारक) (इत:) इसी ईश्वर के सामर्थ्य से (जात:) उत्पन्न हुआ (विश्वम्) संसार (इदम्) यह (विचष्टे) उसने रचा है (वैश्वानर:) संसारस्थ सब नरों का नेता=नायक (यतते) प्रकाशक है=अर्थात् सब प्रकाशक पदार्थ उसके रचे हैं (सूर्येण) सूर्य के साथ ।।

अन्वयः—यो वैश्वानर इतो जात इदं कं विश्वं जगद् विचष्टे यः सूर्येण सह यतते यो भुवनानामभिश्री राजास्ति तस्य वैश्वानरस्य सुमतौ हि वयं स्याम ।। ●

मूल स्तुति

न यस्य देवा देवता न मर्त्ता आपश्च न शवसो अन्तमापुः ।
स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्ष्मो दिवश्च मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥३२॥
ऋ० १ । ७ । १० । १९ ॥

व्याख्यान—हे अनन्तबल ! "न यस्य" जिस परमात्मा का और उसके बलादि सामर्थ्य का "देवाः" इन्द्रिय "देवता" विद्वान्, सूर्यादि, बुद्धयादि "न, मर्त्ताः" साधारण मनुष्य "आपश्च न" आप= प्राण, वायु, समुद्र इत्यादि सब अन्त (पार) कभी नहीं पा सकते. किन्तु "प्ररिक्वा" प्रकृष्टता से इनमें व्यापक हो के अतिरिक्त (इन से विलक्षण) भिन्न ही परिपूर्ण हो रहा है, सो "मरुत्वान्" अत्यन्त बलवान् इन्द्र परमात्मा "त्वक्षसा" शत्रुओं के बल का छेदक बल से "क्ष्मः" पृथिवी को "दिवश्च" स्वर्ग को धारण करता है, सो "इन्द्रः" परमात्मा "ऊती" हमारी रक्षा के लिये "भवतु" तत्पर हो ॥ ३२ ॥

पदार्थः—(न) कभी नहीं (यस्य) जिस परमात्मा के (शवसः) बलादि सामर्थ्य का (देवाः) इन्द्रियाँ (देवताः) अविद्वान्, सूर्यादि, बुद्धि-आदि (न) कभी नहीं (मर्त्ताः) साधारण मनुष्य (आपः) प्राण, वायु, समुद्र इत्यादि (च) और (न) कभी नहीं (अन्तम्) अन्त=पार (आपुः) पा सकते (सः) सो (प्ररिक्वा) प्रकृष्टता से इनमें व्यापक हो के अतिरिक्त=इनसे विलक्षण भिन्न ही परिपूर्ण हो रहा है (त्वक्षसा) शत्रुओं के बल के छेदक बल से (क्ष्मः) पृथिवी (दिवः) स्वर्ग का (च) और (मरुत्वान्) अत्यन्त बलवान् इन्द्र परमात्मा (नः) हमारी (भवतु) तत्पर हो (इन्द्रः) परमात्मा (ऊती) रक्षा के लिये ॥

अन्वयः—यस्येन्द्रस्य जगदीश्वरस्य शवसोऽन्तं देवता देवा न मर्त्ता नापश्च नापुः । यस्त्वक्षसा क्ष्मो दिवश्चान्यांश्च लोकान् प्ररिक्वा स मरुत्वान् इन्द्रो न ऊती भवतु ॥ ●

मूल प्रार्थना

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः । स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥३३॥
ऋ० १ । ७ । ७ । १ ॥

व्याख्यान—हे "जातवेदः" परब्रह्मन् ! आप जातवेद हो, उत्पन्नमात्र सब जगत् को जाननेवाले हो, सर्वत्र प्राप्त हो, जो विद्वानों से ज्ञात सब में विद्यमान (जात अर्थात् प्रादुर्भूत अनन्त धनवान् वा अनन्त ज्ञानवान् हो इससे आपका नाम जातवेद है) उन आपके लिये "वयं, सोमं, सुनवाम" जितने सोम प्रिय गुणविशिष्टादि हमारे पदार्थ हैं, वे सब अर्पित हैं। सो आप हे कृपालो ! "अरातीयतः" दुष्ट शत्रु जो हम धर्मात्माओं का विरोधी उसके "वेद" धनैश्वर्यादि का "निदहाति' नित्य दहन करो जिससे वह दुष्टता को छोड़ के श्रेष्ठता को स्वीकार करे, तथा "नः" हमको "दुर्गाणि, विश्वा" सम्पूर्ण दुस्सह दुःखों से "पर्षदति" पार करके आप नित्य सुख को प्राप्त करो। "नावेव, सिन्धुम्" जैसे अति कठिन नदी वा समुद्र से पार होने के लिए नौका होती है, "दुरितात्यग्निः" वैसे ही हम को सब पापजनित अत्यन्त पीड़ाओं से पृथक् (भिन्न) करके संसार में और मुक्ति में ही परमसुख को शीघ्र प्राप्त करो ॥ ३३ ॥

पदार्थः—(जातवेदसे) उत्पन्नमात्र सब जगत् को जानने वाले के लिये सर्वत्र प्राप्त के लिये/सब में विद्यमान के लिये अर्पित करते हैं (सोमम) जितने सोम=प्रिय गुण विशिष्ट आदि पदार्थों को (अरातीयतः) धर्मात्माओं के विरोधी दुष्ट शत्रु के (निदहाति) नित्य दहन करो (वेदः) धन ऐश्वर्य आदि का (सः) आप (नः) हम को (पर्षदति) पार करके नित्य सुख को प्राप्त करो (दुर्गाणि) दुःसह

दुःखों से (विश्वा) सम्पूर्ण (नावा) नौका से (इव) जैसे (सिन्धुम्) अति कठिन नदी वा समुद्र को (दुरिताति) सब पाप जनित अत्यन्त पीड़ाओं से पृथक् कर (अग्निः) परम सुख ।।

अन्वयः—यस्मै जातवेदसे जगदीश्वराय वयं सोमं सुनवाम यश्चारातीयतो वेदो निदहाति सोऽग्निर्नावेव सिन्धुं नोऽतिदुर्गाण्यति-दुरिता विश्वा पर्षत् सोऽत्रान्वेषणीयः ।।

मूल स्तुति

स वंज्रभृद्दस्युहा भीम उग्रः सहस्रंचेताः शतनींथ ऋभ्वां । चम्रीषो न शवंसा पाञ्चंजन्यो मरुत्वांन्नो भवत्विन्द्रं ऊती ॥ ३४ ॥ ऋ० १ । ७ । १० । १२ ॥

व्याख्यान—हे दुष्टनाशक परमात्मन् ! आप "वज्रभृत्" अच्छेद्य (दुष्टों के छेदक) सामर्थ्य से सर्वशिष्टहितकारक, दुष्टविनाशक जो न्याय, उसको धारण कर रहे हो। "प्राणो वा वज्रः" इत्यादि शतपथादि का प्रमाण है, अतएव "दस्युहा" दुष्ट पापी लोगों का हनन करने वाले हो। "भीमः" आप की न्याय आज्ञा को छोड़नेवालों पर भयङ्कर भय देनेवाले हो। "सहस्रचेताः" सहस्रों विज्ञानादि गुण वाले आप ही हो। "शतनीथः" सैकड़ों असंख्यात पदार्थों की प्राप्ति करानेवाले हो। "ऋभ्वा" अत्यन्त विज्ञानादि प्रकाशवाले हो और सब के प्रकाशक हो, तथा महान् वा महाबलवाले हो। "न, चम्रीषः" किसी की चमू (सेना) में वश को प्राप्त नहीं होते हो। "शवसा, पाञ्चजन्यः" स्वबल से आप पाञ्चजन्य (पाँच प्राणों के) जनक हो। "मरुत्वान्" सब प्रकार के वायुओं के आधार तथा चालक हो, सो आप "इन्द्रः" हमारी रक्षा के लिये प्रवृत्त हों, जिससे हमारा कोई काम न बिगड़े ॥ ३४ ॥

पदार्थः—(सः) सो आप (वज्र भृत्) सर्वशिष्टहितकारक दुष्टविनाशक न्याय को धारण करने वाले (दस्युहा) दुष्ट पापी लोगों का हनन करने वाले (भीमः) आप की न्याय-आज्ञा को छोड़ने वालों पर भय देने वाले (उग्रः) भयङ्कर (सहस्रचेताः) सहस्रों विज्ञानादि गुण वाले (शतनीथः) सैंकड़ों असंख्यात पदार्थों की प्राप्ति कराने वाले

(ऋभ्वा) अत्यन्त विज्ञानादि प्रकाश वाले, सब के प्रकाशक, महान् महाबल, वाले (चम्रीषः) चमू (सेना) में वश को प्राप्त (न) नहीं (शवसा) स्वबल से (पाञ्चजन्यः) पाँच प्राणों के जनक (मरुत्वान्) सब प्रकार के वायुओं के आधार तथा चालक (नः) हमारी (भवतु) प्रवृत्त हों (इन्द्र) इन्द्र (ऊती) रक्षा के लिए ॥

अन्वयः—हे दुष्टनाशक परमात्मन् ! यस्त्वं वज्रभृद् दस्युहा भीम उग्रः सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा न चम्रीषः शवसा पाञ्चजन्यो मरुत्वान्, स इन्द्रो नोऽस्माकमूती भवतु ॥

मूल प्रार्थना

सेमं नः काममापृण गोभिरश्वैः शतक्रतो ।
स्तवाम त्वा स्वाध्यः ॥ ३५ ॥ ऋ० १ । १ । ३१ । ९ ॥

व्याख्यान—हे "शतक्रतो" अनन्त क्रियेश्वर ! आप असंख्यात विज्ञानादि यज्ञों से प्राप्य हो तथा अनन्तक्रियायुक्त हो, सो आप "गोभिरश्वैः" गाय, उत्तम इन्द्रिय, श्रेष्ठ पशु, सर्वोत्तम अश्वविद्या (विज्ञानादि युक्त) तथा अश्व अर्थात् श्रेष्ठ घोड़ा आदि पशुओं और चक्रवर्ती राज्यैश्वर्य्य से "सेमं, नः, काममापृण" हमारे काम को परिपूर्ण करो। फिर हम भी "स्तवाम, त्वा, स्वाध्यः" सुबुद्धियुक्त हो के उत्तम प्रकार से आप का स्तवन (स्तुति) करें ।

हम को दृढ़ निश्चय है कि आप के विना दूसरा कोई किसी का काम पूर्ण नहीं कर सकता। आपको छोड़ के दूसरे का ध्यान वा याचना जो करते हैं, उनके सब काम नष्ट हो जाते हैं ॥ ३५ ॥

पदार्थः—(सः) सो आप (इमम्) इस (नः) हमारे (कामम्) काम को (आपृण) परिपूर्ण करो (गोभिः) गाय, उत्तम इन्द्रिय, श्रेष्ठ पशुओं से (अश्वैः) सर्वोत्तम अश्वविद्या और चक्रवर्त्ती राज्यैश्वर्य से (शतक्रतो) हे अनन्त क्रियेश्वर ! (स्तवाम) हम स्तवन (स्तुति) करें (त्वा) आपका (स्वाध्यः) सुबुद्धियुक्त हो के ॥

अन्वयः—हे शतक्रतो जगदीश्वर ! यं त्वा स्वाध्यो वयं त्वां स्तवामः स्तुवेम स त्वं गोभिरश्वैर्नोऽस्माकं काममापृण समन्तात् प्रपूरय ॥

मूल स्तुति

सोमं गीर्भिष्ट्वा वयं वर्द्धयामो वचोविदः । सुमृळीको न आविंश ॥ ३६ ॥ ऋ० १ । ६ । २१ । ११ ॥

व्याख्यान—हे "सोम" सर्वजगदुत्पादकेश्वर ! आप को "वचोविदः" शास्त्रवित् हम लोग स्तुतिसमूह से "वर्द्धयामः" सर्वोपरि विराजमान मानते हैं, "सुमृळीको, नः, आविश" क्योंकि हम को सुन्दर सुख देनेवाले आप ही हो, सो कृपा करके हम को आप आवेश करो, जिससे हम लोग अविद्या अन्धकार से छूट और विद्यासूर्य को प्राप्त हो के आनन्दित हों ॥ ३६ ॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वजगदुत्पादकेश्वर ! (गीर्भिः) स्तुतिसमूह से (त्वा) आपको (वयम्) हम लोग (वर्द्धयामः) सर्वोपरि विराजमान मानते हैं (वचोविदः) शास्त्रवित् हम लोग (सुमृळीकः) सुन्दर सुख देने वाले (नः) हमको (आविश) आप आवेश करो ॥

अन्वयः—हे सोम ! यतः सुमृळीको वैद्यस्त्वं नोऽस्मानाविश, तस्मात् त्वा त्वां वचोविदो वयं गीर्भिर्नित्यं वर्द्धयामः ॥

मूल प्रार्थना

सोम रार॒न्धि नो॑ हृदि गावो॒ न यवसे॒ष्वा । मर्यं इव॒ स्व ओ॒क्ये॑ ॥ ३७ ॥ ऋ० १ । ६ । २१ । १३ ॥

व्याख्यान—हे "सोम" सोम्य सौख्यप्रदेश्वर ! आप कृपा करके "रारन्धि, नो, हृदि" हमारे हृदय में यथावत् रमण करो। (दृष्टान्त)—जैसे सूर्य्य की किरण, विद्वानों का मन और गाय-पशु अपने-अपने विषय और घासादि में रमण करते हैं,* वा जैसे 'मर्य्यं, इव, स्व, ओक्ये'' मनुष्य अपने घर में रमण करता है, वैसे ही आप सदा स्वप्रकाशयुक्त हमारे हृदय (आत्मा) में रमण कीजिये। जिससे हमको यथार्थ सर्वज्ञान और आनन्द हो ॥ ३७ ॥

पदार्थः—(सोम) हे सोम्य सौख्यप्रदेश्वर (रारन्धि) रमण करो (नः) हमारे (हृदि) हृदय में (गावः) सूर्य की किरण, विद्वानों का मन, और गाय पशु (न) जैसे (यवसेषु) अपने-अपने विषय और घास आदि में (आ) यथावत् (मर्य) मनुष्य (इव) जैसे (स्वे) अपने (ओक्ये) घर में ॥

अन्वयः—हे सोम ! यतस्त्वमयं च नो हृदि नेव यवसेषु गावो स्व ओक्ये मर्य इवारारन्धि समनाद् रमस्व रमते वा। तस्मात् सर्वैः सदा सेवनीयः ॥

---

* दृष्टान्त का एकदेश रमणमात्र लेना।

मूल स्तुति

गयस्फानों अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्द्धनः। सुमित्रः सोम नो भव ॥ ३८ ॥ ऋ० १। ६। २१। १२ ॥

व्याख्यान—हे परमात्मभक्त जीवो ! अपना इष्ट जो परमेश्वर, सो "गयस्फानः" प्रजा, धन, जनपद और सुराज्य का बढ़ानेवाला है, तथा "अमीवहा" शरीर, इन्द्रियजन्य और मानस रोगों का हनन=विनाश करनेवाला है। "वसुवित्" सब पृथिव्यादि वसुओं का जाननेवाला है, अर्थात् सर्वज्ञ और विद्यादि धन का दाता है। "पुष्टिवर्धनः" अपने शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा की पुष्टि को बढ़ानेवाला है। "सुमित्रः, सोम, नो, भव" सुन्दर यथावत् सब का परममित्र वही है, सो अपने उससे यह मांगें कि हे सोम=सर्वजगदुत्पादक ! आप ही कृपा करके हमारे सुमित्र हो, और हम भी सब जीवों के मित्र हों, तथा अत्यन्त मित्रता आप से भी रक्खें ॥ ३८ ॥

पदार्थः—(गयस्फानः) प्रजा, धन, जनपद और सुराज्य का बढ़ाने वाला (अमीवहा) शरीर, इन्द्रियजन्य और मानस रोगों का हनन=विनाश करनेवाला (वसुवित्) सब पृथिवी आदि वसुओं का जानने वाला/ सर्वज्ञ/ विद्यादि धन का दाता (पुष्टिवर्द्धनः) शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा की पुष्टि का बढ़ाने वाला (सुमित्रः) सबका परम मित्र (सोम) हे सर्वजगदुत्पादक ! (नः) हमारे (भव) हो ॥

अन्वयः—हे सोम ! यतस्त्वं नोऽस्माकं गयस्फानोऽमीवहा-वसुवित् सुमित्रः पुष्टिवर्धनो भव भवसि वा तस्माद् अस्माभिः सेव्यः ॥

मूल प्रार्थना

त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि । अप नः शोशुचदघम् ॥ ३९ ॥ ऋ० । १ । ७ । ५ । ६ ॥

व्याख्यान—हे अग्ने परमात्मन्! "त्वं हि" तू ही "विश्वतः परिभूरसि" सब जगत्, सब ठिकानों में व्याप्त हो, अतएव आप विश्वतोमुख हो। हे सर्वतोमुख अग्ने! आप स्वशक्ति से सब जीवों के हृदय में सत्योपदेश नित्य ही कर रहे हो, वही आप का मुख है। हे कृपालो! "अप, नः, शोशुचदघम्" आप की इच्छा से हमारा पाप सब नष्ट हो जाय, जिससे हम लोग निष्पाप हो के आप की भक्ति और आज्ञापालन में नित्य तत्पर रहें ॥ ३९ ॥

पदार्थः—(त्वम्) तू (हि) ही (विश्वतोमुख) हे सर्वतोमुख अग्ने! (विश्वतः) सब जगत्, सब ठिकानों में (परिभूः) व्याप्त (असि) हो (नः) हमारा (अप-शोशुचत्) सब नष्ट हो जाय (अघम्) पाप ॥

अन्वयः—हे विश्वतोमुख जगदीश्वर! यतस् त्वं हि खलु विश्वतः परिभूरसि तस्माद् भवान् नोऽस्माकमघमपशोशुचद् ॥

मूल स्तुति

तमी॑ळत प्रथ॒मं य॑ज्ञ॒साधं॒ विश॒ आरी॑राहु॑तमृ॒ञ्जसा॒नम् ।
ऊ॒र्जः पु॒त्रं भ॑र॒तं सृ॒प्रदा॑नुं दे॒वा अ॒ग्निं धा॑रयन्द्रविणो॒दाम् ॥४०॥
ऋ० १ । ७ । ३ । ३ ॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो ! "तमीळत" उस अग्नि की स्तुति करो, कि जो "प्रथमम्" सब कार्यों से पहिले वर्त्तमान और सब का आदि कारण है, तथा "यज्ञसाधम्" सब संसार और विज्ञानादि यज्ञ का साधक (सिद्ध करने वाला), सब का जनक है ।

हे "विशः" मनुष्यो ! उसी को स्वामी मानकर "आरीः" प्राप्त होओ जिसको अपने दीनता से कहते हैं, विज्ञानादि से विद्वान् लोग सिद्ध करते, और जानते हैं ।

"ऊर्जः पुत्रं, भरतम्" पृथिव्यादि जगत्‌रूप अन्न का पुत्र अर्थात् पालन करनेवाला, तथा भरत अर्थात् उसी अन्न का पोषण और धारण करनेवाला है "सृप्रदानुम्" सब जगत् को चलने की शक्ति देनेवाला और ज्ञान का दाता है, उसी को "देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम्" देव (विद्वान् लोग) अग्नि कहते और धारण करते हैं । वही सब जगत् को द्रविण अर्थात् निर्वाह के सब अन्न जलादि पदार्थ और विद्यादि पदार्थों का देनेवाला है ।

उस अग्नि परमात्मा को छोड़ के अन्य किसी की भक्ति, याचना कभी किसी को न करनी चाहिये ॥ ४० ॥

पदार्थः—(तम्) उस अग्नि की (ईळत) स्तुति करो (प्रथमम्) सब कार्यों से पहले वर्तमान और सब का मुख्य कारण (यज्ञसाधम्) सब संसार और विज्ञानादि यज्ञ का साधक, सबका जनक (विशः) हे

मनुष्यो ! (आरीः) प्राप्त हो ओ (आहुतम्) जिसको अपने दीनता से कहते हैं। जिसको अपने पुकारते हैं (ऋञ्जसानम्) जिसको विज्ञान आदि से विद्वान् लोग सिद्ध करते हैं और जानते हैं (ऊर्जः) पृथिवी आदि जगत् रूप अन्न का (पुत्रम्) पालन करने वाले को (भरतम्) जगत् के पोषण और धारण करने वाले को (सुप्रदानुम्) सब जगत् को चलने की शक्ति देने वाले और ज्ञान के दाता को (देवाः) विद्वान् लोग (अग्निम्) अग्नि (धारयन्) कहते हैं और धारण करते हैं (द्रविणोदाम्) द्रविण अर्थात् निर्वाह के सब अन्न जल आदि और विद्यादि पदार्थों के देने वाले को ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यं प्रथमं यज्ञसाधम् ऋञ्जसानं विद्वद्भिराहुतमारीर्विशो भरतं सुप्रदानुम् ऊर्जः पुत्रं प्राणं च जनयन्तं द्रविणोदामग्निं देवा धारयन् धरन्ति धारयन्ति वा तं परमेश्वरं यूयं नित्यमीळत ॥

मूल प्रार्थना

तमूतयो रणयञ्छूरसातौ तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वत त्राम् ।
स विश्वस्य करुणस्येश एको मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥४१॥
ऋ० १ । ७ । ९ । ७ ॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो ! "तमूतयः" उसी इन्द्र परमात्मा की प्रार्थना तथा शरणागति से अपने को "ऊतयः" अनन्त रक्षण तथा बलादि गुण प्राप्त होंगे, "शूरसातौ" युद्ध में अपने को यथावत् "रणयन्" रमण और रणभूमि में शूरवीरों के गुण परस्पर प्रीत्यादि प्राप्त करावेगा ।

"तं क्षेमस्य, क्षितयः" हे शूरवीर मनुष्यो ! उसी को क्षेम= कुशलता का "त्राम्" रक्षक "कृण्वत" करो, जिससे अपना पराजय कभी न हो । क्योंकि "सः, विश्वस्य" सो करुणामय सब जगत् पर करुणा करनेवाला "एकः" एक ही है; अन्य कोई नहीं । सो परमात्मा "मरुत्वान्" प्राण, वायु, बल, सेनायुक्त "ऊती" (ऊतये) सम्यक् हम लोगों पर कृपा से रक्षक हो । जिसकी रक्षा से हम लोग कभी पराजय को न प्राप्त हों ॥ ४१ ॥

पदार्थः—(तम्) उसी इन्द्र परमात्मा की प्रार्थनादि से (ऊतयः) अनन्त रक्षण तथा बलादि गुण (शूरसातौ) युद्ध में (रणयन्) रमण और शूरवीरों के गुण परस्पर प्रीति आदि प्राप्त करावेगा (तम्) उसी को (क्षेमस्य) क्षेम कुशलता का (क्षितयेः) हे शूरवीर मनुष्यो ! (त्राम्) रक्षक (कृण्वत) करो (सः) सो (विश्वस्य) सब जगत् पर (करुणस्य) करुणामय, करुणा करने वाला (ईशः) परमात्मा (एकः) एक ही है (मरुत्वान्) प्राण, वायु बल सेना युक्त (नः) हम लोगों पर (भवतु) हो (इन्द्रः) परमात्मा (ऊती) रक्षक ॥

अन्वयः—यमूतयो भजन्तु तं शूरसातौ क्षितयस्त्रां कृण्वन्तु कुर्वन्तु। यः क्षेमस्य कर्त्ता तं त्रां कुर्वन्तो शूरसातौ रणयन्। य एको विश्वस्य करुणस्येशे स मरुत्वानिन्द्रः सेनादिरक्षको न ऊती भवतु ॥

मूल स्तुति

स पूर्व॑या नि॒विदा॑ क॒व्यता॒योरि॒माः प्र॒जा अ॑जनय॒न्मनू॑नाम्।
वि॒वस्व॑ता॒ चक्ष॑सा॒ द्याम॒पश्च॑ दे॒वा अ॒ग्निं धा॑रयन्द्रविणो॒दाम् ॥
४२ ॥ ऋ० १ । ७ । ३ । २ ॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो ! सो ही "पूर्वया, निविदा" आदि सनातन, सत्यता आदि गुणयुक्त अग्नि परमात्मा था, अन्य कोई नहीं था, तब सृष्टि के आदि में स्वप्रकाशस्वरूप एक ईश्वर ने प्रजा की उत्पत्ति की, ईक्षणता (विचार) करता हुआ "कव्यतायोः" और परस्पर मनुष्य और पश्वादि के व्यवहार चलने के लिए सर्वज्ञता आदि सत्यविद्यायुक्त वेदों को तथा "मनूनाम्" मननशील मनुष्यों की तथा अन्य पशु, वृक्षादि की भी "प्रजाः" प्रजा को "अजनयत्" उत्पन्न किया, इनमें उन मनन शील मनुष्यों को अवश्य स्तुति करने योग्य वही है। "विवस्वता चक्षसा" और उसी ने सूर्यादि तेजस्वी सब पदार्थों के प्रकाशने वाले बल से स्वर्ग (सुख विशेष) सबलोक "अपः" अन्तरिक्ष में पृथिव्यादि मध्यम लोक और निकृष्ट दुःखविशेष नरक और सब दृश्यमान तारे आदि लोकलोकान्तर रचे हैं। जो ऐसा सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वर है, उसी "द्रविणोदाम्" विज्ञानादि धन देने वाले को "देवाः" विद्वान् लोग अग्नि जानते हैं। हम लोग उसी को भजें ॥ ४२ ॥

पदार्थः—(सः) सो ही (पूर्वया) आदिसनातन (निविदा) सत्यता आदि गुण युक्त परमात्मा था (कव्यता) अन्य कोई कार्य नहीं था (आयोः) सृष्टि के आदि में (इमाः) इस (प्रजाः) प्रजा की (अजनयत्) उत्पत्ति की (मनूनाम्) ज्ञानस्वरूप (विवस्वता) स्वप्रकाश-स्वरूप एक ईश्वर ने (चक्षसा) ईक्षणता=विचार (द्याम्) सब दृश्यमान तारे आदि लोकलोकान्तर (अपः) निकृष्ट दुःखविशेष नरक (च) और (देवाः) विद्वान् लोग (अग्निम्) अग्नि (धारयन्) जानते हैं (द्रविणोदाम्) विज्ञानादि धन देने वाले को ।।

अन्वयः—मनुष्यैर्यः पूर्वया निविदा कव्यतामनूनामायोरिमाः प्रजा अजनयज्जनयति विवस्वता चक्षसा द्यामपः पृथिव्योषध्यादिकं च यं द्रविणोदामग्निं परमेश्वरं देवा धारयन् धारयन्ति स नित्यम् उपासनीयः ।।

मूल प्रार्थना

व॒यं जये॑म॒ त्वया॑ यु॒जा वृत॑म॒स्माक॒मंश॒मुद॑वा॒ भरे॑ भरे।
अ॒स्मभ्य॑मिन्द्र॒ वरि॑वः सु॒गं कृ॑धि॒ प्र शत्रू॑णां मघव॒न्वृष्ण्या॑।
रुज ॥ ४३ ॥ ऋ० १ । ७ । १४ । ४ ॥

व्याख्यान—हे इन्द्र परमात्मन् ! "त्वया, युजा, वयं, जयेम" आपके साथ वर्त्तमान आप की सहयता से हम लोग दुष्ट शत्रुजन को जीतें। कैसा वह शत्रु ? कि "आवृतम्" हमारे बल से घेरा हुआ।

हे महाराजाधिराजेश्वर ! "भरे भरे अस्माकमंशमुदवा" युद्ध-युद्ध में हमारे अंश (बल) सेना का "उदवा" उत्तम रीति से कृपा करके रक्षण करो, जिससे किसी युद्ध में क्षीण होके हम पराजय को न प्राप्त हों, किन्तु जिनको आप की सहयता है उनका सर्वत्र विजय होता ही है।

हे "इन्द्रमघवन्" महाधनेश्वर ! "शत्रूणां, वृष्ण्या" हमारे शत्रुओं के वीर्य्य पराक्रमादि को "प्ररुज" प्रभग्न रुग्ण करके नष्ट कर दे "अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः, सुगं, कृधि" हमारे लिये चक्रवर्ती राज्य और साम्राज्य धन को "सुगम्" सुख से प्राप्त कर अर्थात् आपकी करुणा से हमारा राज्य और धन सदा वृद्धि को प्राप्त हो ॥ ४३ ॥

पदार्थः—(वयम्) हम लोग (जयेम) दुष्ट जन को जीतें (त्वया) आपके साथ वर्त्तमान (युजा) आपकी सहायता से (आवृतम्) हमारे बल से घेरा हुआ (अस्माकम्) हमारे (अंशम्) अंश (बल) सेना को (उदवा) उत्तम रीति से रक्षण करो (भरे भरे) युद्ध-युद्ध में (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (इन्द्र मघवन्) हे महाधनेश्वर ! (वरिवः) चक्रवर्त्ती राज्य और साम्राज्य धन को (सुगम्) सुख से प्राप्त

(कृधि) कर (शत्रूणाम्) हमारे शत्रुओं के (मघवन्) महाधनेश्वर (वृष्ण्या) वीर्य पराक्रमादि को (प्र-रुज) प्रभग्न, रुग्ण करके नष्ट कर दे ॥

अन्वयः—हे इन्द्र परमात्मन्! वयं त्वया युजा आवृतं शत्रुं जयेम। हे महाराजाधिराजेश्वर! त्वं भरे भरे अस्माकमंशं सेनाम् उदवा। हे इन्द्र मघवन् महाधनेश्वर! त्वं शत्रूणां वृष्ण्या प्ररुज। अस्माकं वरिवः सुगं कृधि ॥



मूल स्तुति

यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत् । इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन् मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ४४ ॥ ऋ० १ । ७ । १२ । ८ ॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो ! जो सब जगत् (स्थावर) जड़ अप्राणी का और "प्राणतः" चेतनावाले जगत् का "पतिः" अधिष्ठाता और पालक है, तथा जो सब जगत् के प्रथम सदा से है और "ब्रह्मणे, गाः, अविन्दत्" जिसने यही नियम किया है कि ब्रह्म अर्थात् विद्वान् के ही लिये पृथिवी का लाभ और उसका राज्य है। और जो "इन्द्रः" परमैश्वर्यवान् परमात्मा, डाकुओं को "अधरान्" नीचे गिराता है तथा उनको मार ही डालता है।

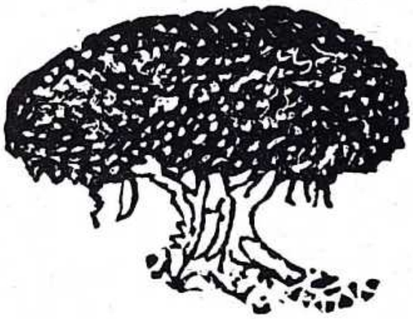
"मरुत्वन्तं सख्याय, हवामहे" आओ मित्रो भाई लोगो ! अपने सब संप्रीति से मिल के मरुत्वान् अर्थात् परमानन्त बल वाले इन्द्र परमात्मा को सखा होनें के लिये अत्यन्त प्रार्थना से गद्गद् हो के बुलावें।

वह शीघ्र ही कृपा करके अपने से सखित्व (परममित्रता) करेगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ४४ ॥

पदार्थः—(यः) जो (विश्वस्य) सब का (जगतः) जगत् (स्थावर) जड़ अप्राणी का (प्राणतः) चेतना वाले जगत् का (पतिः) अधिष्ठाता और पालक (यः) जो (ब्रह्मणे) ब्रह्म अर्थात् विद्वान् के लिये ही (प्रथमः) प्रथम सदा से है (गाः) पृथिवी का (अविन्दत्) लाभ और उसका (पृथिवी का) राज्य है (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् परमात्मा (यः) जो (दस्यून्) डाकुओं को (अधरान्) नीचे (अवातिरत्) गिराता

है। (मरुत्वन्तम्) उस परमानन्द, बलवाले इन्द्र परमात्मा को (सख्याय) सखा होने के लिये (हवामहे) अत्यन्त प्रार्थना से गद्गद् होके बुलावें ॥

अन्वयः—यः प्रथम इन्द्र ब्रह्मणे गा अविन्दत्। यो दस्यू-नधरानवातिरत्। यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्वर्त्तते तं मरुत्वन्तं सख्याय वयं हवामहे ॥



मूल प्रानार्थ

मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते ।
यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु ॥
४५ ॥ ऋ० १ । ८ । ५ । २ ॥

व्याख्यान—हे दुष्टों को रुलानेहारे रुद्रेश्वर ! हमको "मृड" सुखी कर, तथा "मयस्कृधि" हम को मय अर्थात् अत्यन्त सुख का सम्पादन कर "क्षयद्वीराय, नमसा, विधेम, ते" शत्रुओं के वीरों का क्षय करनेवाले, अत्यन्त नमस्कारादि से आपकी परिचर्या करनेवाले, हम लोगों का रक्षण यथावत् कर ।

"यच्छम्" हे रुद्र ! आप हमारे पिता (पालक) हो, हमारी सब प्रजा को सुखी कर । "योश्च" प्रजा के रोगों का भी नाश कर ।

जैसे "मनुः" मान्यकारक पिता "आयेजे" स्वप्रजा को संगत और अनेक विध लाड़न करता है वैसे आप हमारा पालन करो ।

हे रुद्र भगवन् "तव, प्रणीतिषु" आपकी आज्ञा का प्रणय अर्थात् उत्तम न्याययुक्त नीतियों में प्रवृत्त होके "तदश्याम" वीरों के चक्रवर्त्ती राज्य को आप के अनुग्रह से प्राप्त हों ।। ४५ ।।

पदार्थः—(मृळ) सुखी कर (नः) हम को (रुद्र) हे दुष्टों को रुलाने वाले रुद्रेश्वर (उत) तथा (नः) हमको (मयस्कृधि) मय अर्थात् अत्यन्त सुख का सम्पादन कर (क्षयद्वीराय) शत्रुओं के वीरों का क्षय करने वाले (नमसा) अत्यन्त नमस्कार आदि से (विधेम) परिचर्या करें (ते) आपकी (यत्) हमारी सब प्रजा को (शम्) सुखी कर (योः) प्रजा के (च) रोगों का भी (मनुः) मान्यकारक (आयेजे) स्वप्रजा को संगत और अनेकविध लाडन करता है (पिता) पिता (तद्) वीरों के

चक्रवर्त्ती राज्य को (अश्याम) प्राप्त हों (तव) आपकी (रुद्र) हे रुद्र भगवन् (प्रणीतिषु) उत्तम न्याययुक्त नीतियों में ॥

अन्वय:—हे रुद्र ! ये वयं क्षयद्वीराय ते तुभ्यन्नमसा विधेम तान् नो त्वं मृड नोऽस्मभ्यं मयस्कृधि च। हे रुद्र ! मनु: पितेव भवान् यत् शं च योश्चायेजे तदश्याम त उत वयं तव प्रणीतिषु वर्त्तमाना सततं सुखिन: स्याम।

मूल स्तुति

देवो न यः पृ॑थि॒वीं वि॒श्वधा॑या उप॒क्षेति॑ हि॒तमि॑त्रो॒ न राजा॑ ।
पु॒रः॒सदः॑ शर्म॒सदो॒ न वी॒रा अ॑नव॒द्या पति॑जुष्टेव॒ नारी॑ ।। ४६ ।।
ऋ० १ । ५ । १९ । ३ ।।

व्याख्यान—हे प्रियबन्धु विद्वानो ! "देवो, न" ईश्वर सब जगत् के बाहर और भीतर सूर्य के समान प्रकाश कर रहा है, "यः, पृथिवीम्" जो पृथिव्यादि जगत् को रच के धारण कर रहा है और "विश्वधाया, उपक्षेति" विश्वधारक शक्ति का भी निवास देने और धारण करनेवाला है, तथा जो सब जगत् का परममित्र अर्थात् जैसे "हितमित्रो, न, राजा" प्रियमित्रवान् राजा अपनी प्रजा का यथावत् पालन करता है, वैसे ही हम लोगों का पालनकर्त्ता वही एक है; और कोई भी नहीं ।

"पुरः सदः, शर्मसदो न, वीराः" जो जन ईश्वर के पुरःसद हैं (ईश्वराभिमुख ही हैं) वे ही शर्मसदः अर्थात् सुख में सदा स्थिर रहते हैं, वा जैसे "न वीराः" पुत्र लोग अपने पिता के घर में आनन्दपूर्वक निवास करते हैं, वैसे ही जो परमात्मा के भक्त हैं वे सदा सुखी रहते हैं । परन्तु जो अनन्यचित्त होके निराकार सर्वत्र व्याप्त ईश्वर की सत्य श्रद्धा से भक्ति करते हैं ।

जैसे कि "अनवद्या, पतिजुष्टेव, नारी" अत्यन्तोत्तमगुणयुक्त पति की सेवा में तत्पर पतिव्रता नारी (स्त्री) रात-दिन तन, मन, धन और अतिप्रेम से अनुकूल रहती है, वैसे प्रेमप्रीतियुक्त होके आओ भाई लोगो ! ईश्वर की भक्ति करें, और अपने सब मिल के परमात्मा से परमसुख लाभ उठावें ।। ४६ ।।

पदार्थः—(देवः) ईश्वर/सूर्य (न) समान (यः) जो (पृथिवीम्) पृथिव्यादि जगत् को (विश्वधायाः) विश्वधारक शक्ति का (उपक्षेति) निवास देने और धारण करने वाला है (हितमित्रः) प्रियमित्रवान् (न) समान (राजा) राजा (पुरःसदः) ईश्वराभिमुख लोग (शर्मसदः) सुख में सदा स्थिर लोग (न) जैसे (वीराः) पुत्र लोग (अनवद्या) अत्यन्तोत्तमगुणयुक्त (पतिजुष्टा) पति की सेवा में तत्पर पतिव्रता (इव) जैसे (नारी) नारी=स्त्री ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यूयं यो देवः पृथिवीं न विश्वधाया हितमित्रो राजा नोपक्षेति पुरःसदः शर्मसदो वीरा न दुःखानि शत्रून् विनाशयति । अनवद्या नारी पतिजुष्टेव सुखे निवासयति तं सदा समाहिता भूत्वा यथावत् परिचरत ॥

मूल प्रार्थना

सा मां सत्योक्तिः परि पातु विश्वतो द्यावा च यत्र ततनन्नहानि च । विश्वमन्यन्निविशते यदेजति विश्वाहापो विश्वाहोदेति सूर्यः ॥ ४७ ॥ ऋ० ७ । ८ । १२ । २ ॥

व्याख्यान—हे सर्वाभिरक्षकेश्वर ! "सा मा सत्योक्तिः" आप की सत्य आज्ञा जिसका हमने अनुष्ठान किया वह "विश्वतः परिपातु, नः" हमको सब संसार से सर्वथा पालन और सब दुष्ट कामों से सदा पृथक् रक्खे कि कभी हमको अधर्म करने की इच्छा भी न हो, "द्यावा, च" और दिव्य सुख से सदा युक्त करके यथावत् हमारी रक्षा करे।

"यत्र" जिस दिव्य सृष्टि में "अहानि" सूर्यादिकों को दिवस आदि के होने के निमित्त "ततनन्" आपने ही विस्तारे हैं, वहां भी हमारा सब उपद्रवों से रक्षण करो।

"विश्व मन्य०" आप से अन्य (भिन्न) विश्व अर्थात् सब जगत् जिस समय आपके सामर्थ्य से (प्रलय में) "नि विशते" प्रवेश करता है (कार्य सब कारणात्मक होता है), उस समय में भी आप हमारी रक्षा करो। "यदेजति" जिस समय यह जगत् आप के सामर्थ्य से चलित होके उत्पन्न होता है, उस समय भी सब पीड़ाओं से आप हमारी रक्षा करें।

"विश्वाहापो, विश्वाहा" जो-जो विश्व का हन्ता (दुःख देनेवाला) उसको आप नष्ट कर देओ, क्योंकि आप के सामर्थ्य से सब जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय होता है। आपके सामने कोई राक्षस (दुष्टजन) क्या कर सकता है ? क्योंकि आप सब जगत् में उदित (प्रकाशमान) हो रहे हो। परन्तु सूर्य्यवत् हमारे हृदय में कृपा करके

प्रकाशित होओ, जिससे हमारी अविद्यान्धकारता सब नष्ट हो ॥ ४७ ॥

पदार्थः—(सा) वह (मा) हमको/हमारी/हमारा (सत्योक्तिः) सत्य-आज्ञा (परिपातु) सर्वथा पालन और सदा पृथक् रखे/यथावत् रक्षा करे (विश्वतः) सब संसार से और सब दुष्ट कामों से (द्यावा) दिव्य सुख से (च) और (यत्र) जिस दिव्य सृष्टि में (ततनन्) आपने ही विस्तारे हैं (अहानि) सूर्यादिकों को दिवस आदि के होने के निमित्त (च) भी (विश्वम्) सब जगत् (अन्यत्)। आप से अन्य= भिन्न (निविशते) आपके सामर्थ्य से प्रलय में प्रवेश करता है=कार्य सब कारणात्मक होता है (यद्) जिस समय यह जगत् (एजति) चलित होके उत्पन्न होता है (विश्वाहापः) विश्व के हन्ताओं से रक्षा करने वाला (विश्वाहा) जो जो विश्व का हन्ता (दुःख देने वाला) (उदेति) आप सब जगत् में उदित (प्रकाशमान) हो रहे हो (सूर्यः) सूर्यवत् हमारे हृदय में प्रकाशित होओ ॥

अन्वयः—हे सर्वाभिरक्षकेश्वर! सा सत्योक्तिर्विश्वतो मा पातु द्यावा च पातु। यत्राहानि च ततनन् तत्र पातु। यदा त्वदन्यद् विश्वं निविशते तदा पातु। यदा विश्वमेजति तदा पातु। हे सर्वाभिरक्षकेश्वर! विश्वाहापो विश्वाहा सन् सूर्यः सूर्यवद् भवान् उदेति ॥

मूल स्तुति

देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे ।
शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥४८॥
ऋ० १ । ६ । ३२ । १३ ॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो ! वह परमात्मा कैसा है ? कि हम लोग उसकी स्तुति करें । हे अग्ने परमेश्वर ! आप "देवो, देवानामसि" देवों (परमविद्वानों) के भी देव (परमविद्वान्) हो, तथा उनको परमानन्द देनेवाले हो, तथा "अद्भुतः" अत्यन्त आश्चर्य्यरूप मित्र सर्व-सुखकारक सब के सखा हो, "वसु०" पृथिव्यादि वसुओं के भी वास करानेवाले हो, तथा "अध्वरे" ज्ञानादि यज्ञ में "चारुः" अत्यन्त शोभायमान और शोभा के देनेवाले हो ।

हे परमात्मन् ! "सप्रथस्तमे सख्ये, शर्मणि तव" आप के अति-विस्तीर्ण, आनन्दस्वरूप सखाओं के कर्म में हम लोग स्थिर हों, जिससे हम को कभी दुःख न प्राप्त हो और आपके अनुग्रह से हम लोग परस्पर अप्रीतियुक्त कभी न हों ॥ ४८ ॥

पदार्थः—(देवः) देव=परमविद्वान् तथा परमानन्द देने वाले (देवानाम्) देवों को=परम विद्वानों को (असि) हो (मित्रः) मित्र, सर्वसुखकारक सबके सखा (अद्भुतः) अत्यन्त आश्चर्यरूप (वसुः) वास कराने वाले (वसूनाम्) पृथिवी आदि वसुओं के भी (असि) हो (चारुः) अत्यन्त शोभायमान और शोभा के देने वाले (अध्वरे) ज्ञानादि यज्ञ में (शर्मन्) आनन्दस्वरूप (स्याम) हम लोग स्थिर हों (तव) आपके (सप्रथस्तमे) अतिविस्तीर्ण में (अग्ने) हे अग्ने परमेश्वर !/परमात्मन् (सख्ये) आनन्दस्वरूप सखाओं के कर्म में (मा) कभी न (रिषाम) परस्पर अप्रीतियुक्त हों (वयम्) हम लोग (तव) आपके अनुग्रह से ॥

अन्वयः—हे अग्ने ! यतस्त्वमध्वरे देवानां देवोऽद्भुतश्चारुर्मित्रोऽसि वसूनां वसुरसि तस्मात्तव सप्रथस्तमे शर्मन् शर्मणि वयं सुनिश्चिताः स्याम तव सख्ये कदाचिन्मा रिषाम च ॥

मूल प्रार्थना

मा नो॑ वधीरिन्द्र॒ मा परा॑ दा॒ मा नः॑ प्रि॒या भोज॑नानि॒ प्र मो॑षीः । आ॒ण्डा मा नो॑ मघवञ्छक्र॒ निर्भे॒न्मा न॒ः पात्रा॑ भेत् स॒हजा॑नुषाणि ॥ ४९ ॥ ऋ० १ । ७ । १९ । ८ ॥

व्याख्यान—हे इन्द्र परमैश्वर्ययुक्तेश्वर ! "मा, नो, वधीः" हमारा वध मत कर अर्थात् अपने से अलग हम को मत गिरावे, "मा परा दाः" हम से अलग आप कभी मत हो, "मा नः प्रिया०" हमारे प्रिय भोगों को मत चोर और मत चोरवावे ।

"आण्डा मा०" हमारे गर्भों का विदारण मत कर । हे "मघवन्" सर्वशक्तिमन् "शक्र" समर्थ हमारे पुत्रों का विदारण मत कर, "मा, नः, पात्रा" हमारे भोजनाद्यर्थ सुवर्णादि पात्रों को हम से अलग मत कर, "सहजानुषाणि" जो जो हमारे सहज अनुषक्त, स्वभाव से अनुकूल मित्र हैं, उनको आप नष्ट मत करो अर्थात् कृपा करके पूर्वोक्त सब पदार्थों की यथावत् रक्षा करो ॥ ४९ ॥

पदार्थः—(मा) मत (नः) हमारा/हमको (वधीः) वध कर/अलग गिराओ (इन्द्र) हे परमैश्वर्ययुक्तेश्वर ! (मा) कभी मत (परा) अलग (दाः) हो (मा) मत (नः) हमारे (प्रिया) प्रिय (भोजनानि) भोगों को (प्रमोषीः) चोर और चोरवावो (आण्डा) गर्भों का (मा) मत (नः) हमारे (मघवन्) हे सर्वशक्तिमन् ! (शक्र) समर्थ हमारे

पुत्रों का (निर्भेत्) विदारण कर (मा) मत (नः) हमारे/महसे (पात्रा) भोजनाद्यर्थ सुवर्णादि पात्रों को (भेत्) अलग कर/नष्ट करो (सहजानुषाणि) सहज अनुषक्त स्वभाव से अनुकूल मित्र हैं; उनको ।।

अन्वयः—हे मघवन् ! शक्रेन्द्र ! सभाधिपते ! त्वं नो मा वधीः मा परादाः । न सहजानुषाणि प्रिया भोजनानि मा प्रमोषीः । नोऽस्माकमाण्डा मा निर्भेत् । नोऽस्माकं पात्रा मा भेत् ।।

मूल प्रार्थना

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न
उक्षितम् । मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो
रुद्र रीरिषः ॥ ५० ॥ ऋ० १ । ८ । ६ । ७ ॥

मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु
रीरिषः । वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा
हवामहे ॥ ५१ ॥ ऋ० १ । ८ । ६ । ८ ॥

व्याख्यान—हे "रुद्र" दुष्टविनाशकेश्वर ! आप हम पर कृपा करो, "मा, नो, व०" हमारे ज्ञानवृद्ध वयोवृद्ध पिता इनको आप नष्ट मत करो, तथा "मा नो अर्भकम्" छोटे बालक और "उक्षन्तम्" वीर्यसेचनसमर्थ जवान तथा जो गर्भ में वीर्य को सेचन किया है, उसको मत विनष्ट करो, तथा हमारे पिता, माता और प्रिय तनुओं (शरीरों) का "मा, रीरिषः" हिंसन मत करो, "मा, नस्तोके" कनिष्ठ, मध्यम और ज्येष्ठपुत्र, "आयौ" उमर "गोषु" गाय आदि पशु, "अश्वेषु" घोड़ा आदि उत्तम यान हमारी सेना के शूरों में "हविष्मन्तः" यज्ञ के करनेवाले इनमें, "भामितः" क्रोधित और "मा रीरिषः" रोषयुक्त होके कभी प्रवृत्त मत हो। हम लोग आप को "सदमित्त्वा, हवामहे" सर्वदैव आह्वान करते हैं।

हे भगवन् रुद्र परमात्मन् ! आप से यही प्रार्थना है कि हमारी और हमारे पुत्र धनैश्वर्यादि की रक्षा करो ॥ ५० ॥ ५१ ॥

पदार्थः—(मा) मत (नः) हमारे (महान्तम्) ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध (पिता) को (उत) और (मा) मत (नः) हमारे (अर्भकम्) छोटे बालक को (मा) मत (नः) हमारे (उक्षन्तम्) वीर्यसेचनसमर्थ

जवान को (उत) तथा (मा) मत (नः) हमारे (उक्षितम्) जो गर्भ में वीर्य सेचन किया है उसको (मा) मत (नः) हमारे (वधीः) नष्ट करो (पितरम्) पिता को (मा) मत (उत) और (मातरम्) माता को (मा) मत (नः) हमारे (प्रियाः) प्रिय (तन्वः) तनुओं=शरीरों को (रुद्र) हे दुष्ट नाशकेश्वर ! (रोरषः) हिंसन करो ॥

पदार्थः—(मा) मत (नः) हमारे (तोके) कनिष्ठ पुत्र में (तनये) मध्यम और ज्येष्ठ पुत्रों में (मा) मत (नः) हमारी (आयौ) उमर में (मा) मत (नः) हमारी (गोषु) गाय आदि पशुओं में (मा) कभी मत (नः) हमारी (अश्वेषु) घोड़ा आदि उत्तम यानों में (रीरिषः) रोषयुक्त हो के प्रवृत्त हो (वीरान्) सेना के शूरों में (मा) मत (नः) हमारे (रुद्र) हे भगवन् रुद्र परमात्मन् ! (भामितः) क्रोधित (वधीः) नष्ट करो (हविष्मन्तः) यज्ञ करने वाले (सदम्) सदा (इत्) एव (त्वा) आपको (हवामहे) आह्वान करते हैं ॥

अन्वयः—हे रुद्र ! त्वं नोऽस्माकं महान्तं मा वधीरुतापि नो ऽर्भकं मा वधीः । न उक्षन्तं मा वधीरुतापि न उक्षितं मा वधीः । न पितरं मा वधीरुत मातरं मा वधीः । नः प्रियास्तन्वस्तनू मा वधी-रन्यायकारिणो दुष्टांश्च रीरिषः ॥

अन्वयः—हे रुद्र ! हविष्मन्तो वयं यतस् सदं त्वामिदेव हवामहे तस्माद् भामितस्त्वं नस्तोके तनये मा रीरिषो न आयौ मा रीरिषः । नो गोषु मा रीरिषः । नोऽश्वेषु मा रीरिषः । नो वीरान् मा वधीः ॥

मूल प्रार्थना

उद्गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि । वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या सर्वतो नः शकुने भद्रमा वद विश्वतो नः शकुने पुण्यमा वद ॥ ५२ ॥ ऋ० २।८।१२।२॥

आवदँस्त्वं शकुने भद्रमा वद तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धि नः । यदुत्पतन् वदसि कर्करिर्यथा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ५३ ॥ ऋ० २ । ८ । १२ । ३ ॥

व्याख्यान—हे "शकुने" सर्वशक्तिमन्नीश्वर ! आप सामगान को गाते ही हो, वैसे ही हमारे हृदय में सब विद्या का प्रकाशित गान करो, जैसे यज्ञ में महापण्डित सामगान करता है वैसे आप भी हम लोगों के बीच में सामादि विद्या का प्रकाश कीजिये ।

"ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु" आप कृपा से सवन (पदार्थविद्याओं) को "शंससि" प्रशंसा करते हो वैसे हमको भी यथावत् प्रशंसित करो । जैसे "ब्रह्मपुत्र इव" वेदों का वेत्ता विज्ञान से सब पदार्थों की प्रशंसा करता है वैसे आप भी हम पर कृपा कीजिये ।

आप "वृषेववाजी" सर्वशक्ति का सेवन करने और अन्नादि पदार्थों के देनेवाले तथा महाबलवान् और वेगवान् होने से वाजी हो, जैसे की वृषभ के समान आप उत्तम गुण और उत्तम पदार्थों की वृष्टि करनेवाले हो वैसे हम पर उनकी वृष्टि करो ।

"शिशुमती:" हम लोग आप की कृपा से उत्तम शिशु (सन्तानादि) को "अपीत्य" प्राप्त होके आप को ही भजें ।

"आसर्वतो नः शकुने" हे शकुने ! सर्व सामर्थ्यवान् ईश्वर ! सब ठिकानों से हमारे लिये "भद्रम्" कल्याण को "आ वद" अच्छे प्रकार

कहो अर्थात् कल्याण की ही आज्ञा और कथन करो, जिससे अकल्याण की बात भी कभी हम न सुनें। "विश्वतो, नः श०" हे सबको सुख देनेवाले ईश्वर ! सब जगत् के लिये "पुण्यम्" धर्मात्मा के कर्म करने को "आ वद" उपदेश कर, जिससे कोई मनुष्य अधर्म करने की इच्छा भी न करे, और सब ठिकानों में सत्यधर्म की प्रवृत्ति हो।

"आवदँस्त्वं शकुने" हे शकुने जगदीश्वर ! आप सब "भद्रम्" कल्याण का भी कल्याण अर्थात् व्यावहारिक सुख के भी ऊपर मोक्ष-सुख का निरन्तर उपदेश कीजिये। "तूष्णीमासीनः सु०" हे अन्तर्यामिन् ! हमारे हृदय में सदा स्थिर हो, मौन से ही "सुमतिम्" सर्वोत्तम ज्ञान देओ। "चिकिद्धि नः" कृपा से हमको अपने रहने के लिये घर ही बनाओ और आपकी परमविद्या को हम प्राप्त हों।

"यदुत्पतन्वद०" उत्तम व्यवहार में पहुँचाते हुए आप का (यथा) जिस प्रकार से "कर्करिर्वदसि" कर्त्तव्य कर्म, धर्म को ही अत्यन्त पुरुषार्थ से करो, अकर्त्तव्य दुष्ट कर्म मत करो, ऐसा उपदेश है कि पुरुषार्थ अर्थात् यथायोग्य उद्यम को कभी कोई मत छोड़ो, वैसे "बृहद्-वदेम विदथे" विज्ञानादि यज्ञ वा धर्मयुक्त युद्धों में "सुवीराः" अत्यन्त शूरवीर हो के बृहत् (सब से बड़े) आप जो परब्रह्म उन "वदेम" आप की स्तुति, आपका उपदेश, आप की प्रार्थना और उपासना तथा आप-का यह बड़ा अखण्ड साम्राज्य और सब मनुष्यों का हित सर्वदा कहें, सुनें और आप के अनुग्रह से परमानन्द को भोगें ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

ओ३म् महाराजाधिराजाय परमात्मने नमो नमः ॥
इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्याणां महाविदुषां श्रीयुत-
विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण दयानन्द-
सरस्वतीस्वामिना विरचित आर्य्याभिविनये
प्रथमः प्रकाशः पूर्त्तिमागमत् ।
समाप्तोऽयं प्रथमः प्रकाशः ॥

[पदार्थः]—(उद्‌गाता) यज्ञ में सामगान करने वाला महापण्डित
जैसे (शकुने) हे सर्वशक्तिमन्नीश्वर ! (साम) सामगान को
[...]स) गाते ही हो (ब्रह्मपुत्रः) वेदों का वेत्ता (इव) जैसे (सवनेषु)
[...]ा सब पदार्थों की (शंससि) प्रशंसा करता है (वृषा) उत्तम गुण
उत्तम पदार्थों की बृष्टि करने वाले (इव) जैसे (वाजी) सर्व-
का सेवन और अन्नादि पदार्थों के देने वाले/महाबलवान् और
[...]न् (शिशुमतीः) उत्तम शिशु=सन्तानादि को (अपीत्य) प्राप्त
(सर्वतः) सब ठिकानों से (नः) हमारे लिये (शकुने) हे सर्व-
[...]र्यवान् ईश्वर ! (भद्रम्) कल्याण को (आवद) अच्छे प्रकार कहो
[...]वतः) सब जगत् के लिये (नः) हमारे (शकुने) हे सबको सुख देने
ईश्वर ! (पुण्यम्) धर्मात्मा के कर्म करने को (आवद) उप-
[...]कर ॥

पदार्थः—(आवदन्) निरन्तर उपदेश करते हुए (त्वम्) आप
[...]ने) हे जगदोश / हे अन्तर्यामिन् ! (भद्रम्) मोक्ष सुख का
[...]द) निरन्तर उपदेश कीजिये (तूष्णीम्) मौन से ही (आसीनः)
[...] हृदय में सदा स्थिर होकर (सुमतिम्) सर्वोत्तम ज्ञान (चिकिद्धि)
रहने के लिये घर ही बनाओ (नः) हमको (यद्) जो (उत्पतन्)
[...]ा व्यवहार में पहुँचाये हुये (वदसि) उपदेश है (कर्करिः) कर्त्तव्य
धर्म को ही पुरुषार्थ से करो (यथा) जिस प्रकार (बृहद्) सब से
[...]परब्रह्म की (वदेम) स्तुति, उपदेश, प्रार्थना, उपासना, आदि
[...]ा कहें, सुनें (विदथे) विज्ञानादि यज्ञों में (सुवीराः) अत्यन्त शूर-
होके ॥

अन्वयः—हे शकुने ! यस्त्वमुद्‌गातेव साम गायसि । ब्रह्मपुत्र
[...]सवनेषु शंससि स त्वं वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्य नः सर्वतो

भद्रमावद। हे शकुने! त्वं सर्वतो विद्यामावद। हे शकुने! त्वं नो विश्वतः पुण्यमावद॥

अन्वयः—हे शकुने त्वमावदन् सन् भद्रमावद तूष्णीमासीनो योगाभ्यासं कुर्वन् नः सुमतिं चिकिद्धि उत्पतन्निव यद् भद्रं यथा कर्करिस्तथा वदसि अनेनैव सुवीराः सन्तो वयं विदथे बृहद्वदेम॥

ओ३म्

तत्सत्परमात्मने नमः ॥

अथ द्वितीयः प्रकाशः ॥

ओ३म् सहनांववतु सह नौं भुनक्तु । सह वीर्य्यं करवावहै ।
जस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहैं ॥ ओ३म् शान्तिः शान्तिः
ान्तिः ॥ १ ॥ तैत्तिरीयारण्यके ब्रह्मानन्दवल्ली प्रपाठक १० ।
थमानुवाकः ॥ १ ॥

व्याख्यान—हे सहनशीलेश्वर ! आप और हम लोग पर-
र प्रसन्नता से रक्षक हों । आप की कृपा से हम लोग सदैव आप की
ी स्तुति, प्रार्थना और उपासना करें तथा आप को ही पिता, माता,
न्धु, राजा, स्वामी, सहायक, सुखद, सुहृद, परमगुर्वादि जानें, क्षण-
ात्र भी आप को भूल के न रहें, आपके तुल्य वा अधिक किसी को
भी न जानें, आप के अनुग्रह से हम सब लोग परस्पर प्रीतिमान्,
क्षक, सहायक, परम पुरुषार्थी हों, एक दूसरे का दुःख न देख सकें,
वदेशस्थादि मनुष्यों को अत्यन्त परस्पर निर्वैर प्रीतिमान् पाखण्ड
हित करें "सह नौ भुनक्तु" तथा आप और हम लोग परस्पर पर-
ानन्द का भोग करें, हम लोग परस्पर हित से आनन्द भोगें कि
ाप हम को अपने अनन्त परमानन्द के भागी करें, उस आनन्द से हम

लोगों को क्षण भी अलग न रक्खें। "सह वीर्यं, करवावहै" आप की सहायता से परमवीर्य जो सत्यविद्या उसको परस्पर परमपुरुषार्थ से प्राप्त हों।

"तेजस्विनावधीतमस्तु" हे अनन्त विद्यामय भगवन्! आप की कृपादृष्टि से हम लोगों का पठनपाठन परम विद्यायुक्त हो तथा संसार में सब से अधिक प्रकाशित हों और अन्योन्यप्रीति से परमवीर्य पराक्रम से निष्कण्टक चक्रवर्ती राज्य भोगें, हम में सब नीतिमान् सज्जन पुरुष हों और आप हम लोगों पर अत्यन्त कृपा करें, जिससे कि हम लोग नाना पाखण्ड, असत्य, वेदविरुद्ध मतों को शीघ्र छोड़ के एक सत्यसनातन मतस्थ हों, जिससे समस्त वैरभाव के मूल जो पाखण्ड-मत, वे सब सद्यः प्रलय को प्राप्त हों।

"मा, विद्विषावहै" और हे जगदीश्वर! आप के सामर्थ्य से हम लोगों में परस्पर विद्वेष अर्थात् अप्रीति न रहे, जिससे हम लोग कभी परस्पर विद्वेष न करें, किन्तु सब तन, मन, धन, विद्या इनको परस्पर सब के सुखोपकार में परमप्रीति से लगावें।

"ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः" हे भगवन्! तीन प्रकार के सन्ताप जगत् में हैं एक आध्यात्मिक (शारीरिक) जो ज्वरादि पीड़ा होने से होता है, दूसरा आधिभौतिक जो शत्रु, सर्प, व्याघ्र, चौरादिकों से होता है, और तीसरा आधिदैविक जो मन, इन्द्रिय, अग्नि, वायु, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अतिशीत, अत्युष्णतेत्यादि से होता है। हे कृपा-सागर! आप इन तीनों तापों की शीघ्र निवृत्ति करें, जिससे हम लोग अत्यानन्द में और आपकी अखण्ड उपासना में सदा रहें।

हे विश्वगुरो! मुझ को असत् (मिथ्या) और अनित्य पदार्थ तथा असत् काम से छुड़ा के सत्य तथा नित्य पदार्थ और श्रेष्ठ व्यवहार में स्थिर कर।

हे जगन्मङ्गलमय ! सब दुःखों से मुझको छुड़ा के, सब सुखों को प्राप्त कर ।

(हे प्रजापते ! सुप्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन, परमैश्वर्येण संयोजय) हे प्रजापते ! मुझ को अच्छी प्रजा पुत्रादि, हस्त्यश्व, गवादि, उत्तम पशु, सर्वोत्कृष्ट विद्या और चक्रवर्त्ती राज्यादि परमैश्वर्य जो स्थिर परमसुखकारक उस को शीघ्र प्राप्त कर ।

हे परमवैद्य ! (सर्वरोगात्पृथक्कृत्य नैरोग्यं देहि) सर्वथा मुझ को सब रोगों से छुड़ा के परम नैरोग्य दे । महाराजाधिराज ! जिससे मैं शुद्ध होके आप की सेवा में स्थिर होऊँ ।

(हे न्यायाधीश ! कुकामकुलोभकुमोहभयशोकालस्येर्ष्याद्वेषप्रमादविषयतृष्णानैष्ठुर्याभिमानदुष्टभावाविद्याभ्यो निवारय, एतेभ्यो विरुद्धेषूत्तमेषु गुणेषु संस्थापय माम्) हे ईश्वर ! कुकाम कुलोभादि पूर्वोक्त दुष्ट दोषों को कृपा से छुड़ा के श्रेष्ठ कामों में यथावत् मुझको स्थिर कर । मैं अत्यन्त दीन होके यही माँगता हूँ कि मैं आप और आप की आज्ञा से भिन्न पदार्थ में कभी प्रीति न करूँ ।

हे प्राणपते, प्राणप्रिय, प्राणपितः, प्राणाधार, प्राणजीवन, सुराज्यप्रद ! मेरे प्राणवाले आदि आप ही हो, मेरा सहायक आप के विना कोई नहीं है ।

हे महाराजाधिराज ! जैसा सत्य न्याययुक्त अखण्डित आप का राज्य है, वैसा न्यायराज्य हम लोगों का भी आप की ओर से स्थिर हो । आप के राज्य के अधिकारी किङ्कर अपने कृपाकटाक्ष से हम को शीघ्र ही कर ।

हे न्यायप्रिय ! हम को भी न्यायप्रिय यथावत् कर, हे धर्माधीश ! हम को धर्म में स्थिर रख ।

हे करुणामय पितः ! जैसे माता और पिता अपने सन्तानों का पालन करते हैं वैसे ही आप हमारा पालन करो ॥ १ ॥

पदार्थः—(सह) परस्पर (नौ) आप और हम लोग (अवतु) रक्षक हों (सह) परस्पर (नौ) आप और हम लोग (भुनक्तु) परमानन्द का भोग करें (सह) परस्पर (वीर्यम्) परम वीर्य जो सत्यविद्या उसको (करवावहै) आपकी सहायता से परम पुरुषार्थ करके प्राप्त हों (तेजस्वि) परमविद्यायुक्त तथा संसार में सबसे अधिक प्रकाशित (नौ) हम लोगों का (अधीतम्) पठन-पाठन (अस्तु) हो (मा-विद्विषावहै) हम लोगों में परस्पर विद्वेष अर्थात् अप्रीति न रहे।

(ओ३म्) हे भगवन् कृपासागर (शान्तिः) आध्यात्मिक सन्ताप की शान्ति कीजिये (शान्तिः) आधिभौतिक सन्ताप की शीघ्र निवृत्ति कीजिये (शान्तिः) आधिदैविक सन्ताप की निवृत्ति कीजिये ॥

अन्वयः—हे सह सहनशीलेश्वर ! नावस्मान् अवतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। नावधीतं तेजस्वि अस्तु। मा विद्विषावहै। ओ३म् ! शान्तिः शान्तिः शान्तिरस्तु ॥

———

मूल स्तुति

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ २ ॥ यजुर्वेद । अध्याय ४० । मं० ८ ॥

व्याख्यान—"स, पर्यगात्" वह परमात्मा आकाश के समान सब जगह में परिपूर्ण (व्यापक) है, "शुक्रम्" सब जगत् का करने वाला वही है "अकायम्" और वह कभी शरीर (अवतार) नहीं धारण करता, क्योंकि वह अखण्ड और अनन्त, निर्विकार है, इससे देहधारण कभी नहीं करता, उससे अधिक पदार्थ नहीं है, इससे ईश्वर का शरीर धारण करना कभी नहीं बन सकता। "अव्रणम्" वह अखण्डैकरस अच्छेद्य, अभेद्य, निष्कम्प और अचल है इससे अंशांशीभाव भी उस में नहीं है, क्योंकि उसमें छिद्र किसी प्रकार से नहीं हो सकता "अस्नाविरम्" नाड़ी आदि का प्रतिबन्ध (निरोध) भी उसका नहीं हो सकता, अतिसूक्ष्म होने से ईश्वर का कोई आवरण नहीं हो सकता, "शुद्धम्" वह परमात्मा सदैव निर्मल अविद्यादि जन्म, मरण, हर्ष, शोक, क्षुधा, तृषादि दोषोपाधियों से रहित है, शुद्ध की उपासना करनेवाला शुद्ध ही होता है और मलिन का उपासक मलिन ही होता है, "अपापविद्धम्" परमात्मा कभी अन्याय नहीं करता क्योंकि वह सदैव न्यायकारी ही है, "कविः" त्रैकालज्ञ (सर्ववित्) महाविद्वान् जिसकी विद्या का अन्त कोई कभी नहीं ले सकता, "मनीषी" सब जीवों के मन (विज्ञान) का साक्षी सब के मन का दमन करनेवाला है, "परिभूः" सब दिशा और सब जगह में परिपूर्ण हो रहा है, सब के ऊपर विराजमान है, "स्वयम्भूः" जिसका आदिकारण माता, पिता, उत्पादक कोई नहीं किन्तु वही सब का आदिकारण है।

"याथातथ्यतोर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः, समाभ्यः" उस ईश्वर ने

पदार्थः—(सह) परस्पर (नौ) आप और हम लोग (अवतु) रक्षक हों (सह) परस्पर (नौ) आप और हम लोग (भुनक्तु) परमानन्द का भोग करें (सह) परस्पर (वीर्यम्) परम वीर्य जो सत्यविद्या उसको (करवावहै) आपकी सहायता से परम पुरुषार्थ करके प्राप्त हों (तेजस्वि) परमविद्यायुक्त तथा संसार में सबसे अधिक प्रकाशित (नौ) हम लोगों का (अधीतम्) पठन-पाठन (अस्तु) हो (मा-विद्विषावहै) हम लोगों में परस्पर विद्वेष अर्थात् अप्रीति न रहे।

(ओ३म्) हे भगवन् कृपासागर (शान्तिः) आध्यात्मिक सन्ताप की शान्ति कीजिये (शान्तिः) आधिभौतिक सन्ताप की शीघ्र निवृत्ति कीजिये (शान्तिः) आधिदैविक सन्ताप की निवृत्ति कीजिये ।।

अन्वयः—हे सह सहनशीलेश्वर ! नावस्मान् अवतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। नावधीतं तेजस्वि अस्तु। मा विद्विषावहै। ओ३म् ! शान्तिः शान्तिः शान्तिरस्तु ।।

———

मूल स्तुति

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ २ ॥ यजुर्वेद । अध्याय ४० । मं० ८ ॥

व्याख्यान—"स, पर्यगात्" वह परमात्मा आकाश के समान सब जगह में परिपूर्ण (व्यापक) है, "शुक्रम्" सब जगत् का करने वाला वही है "अकायम्" और वह कभी शरीर (अवतार) नहीं धारण करता, क्योंकि वह अखण्ड और अनन्त, निर्विकार है, इससे देहधारण कभी नहीं करता, उससे अधिक पदार्थ नहीं है, इससे ईश्वर का शरीर धारण करना कभी नहीं बन सकता। "अव्रणम्" वह अखण्डैकरस अच्छेद्य, अभेद्य, निष्कम्प और अचल है इससे अंशांशीभाव भी उस में नहीं है, क्योंकि उसमें छिद्र किसी प्रकार से नहीं हो सकता "अस्नाविरम्" नाड़ी आदि का प्रतिबन्ध (निरोध) भी उसका नहीं हो सकता, अतिसूक्ष्म होने से ईश्वर का कोई आवरण नहीं हो सकता, "शुद्धम्" वह परमात्मा सदैव निर्मल अविद्यादि जन्म, मरण, हर्ष, शोक, क्षुधा, तृषादि दोषोपाधियों से रहित है, शुद्ध की उपासना करनेवाला शुद्ध ही होता है और मलिन का उपासक मलिन ही होता है, "अपापविद्धम्" परमात्मा कभी अन्याय नहीं करता क्योंकि वह सदैव न्यायकारी ही है, "कविः" त्रैकालज्ञ (सर्ववित्) महाविद्वान् जिसकी विद्या का अन्त कोई कभी नहीं ले सकता, "मनीषी" सब जीवों के मन (विज्ञान) का साक्षी सब के मन का दमन करनेवाला है, "परिभूः" सब दिशा और सब जगह में परिपूर्ण हो रहा है, सब के ऊपर विराजमान है, "स्वयम्भूः" जिसका आदिकारण माता, पिता, उत्पादक कोई नहीं किन्तु वही सब का आदिकारण है।

"याथातथ्यतोर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः, समाभ्यः" उस ईश्वर ने

अपनी प्रजा को यथावत् सत्य, सत्यविद्या जो चार वेद उनका सब मनुष्यों के परमहितार्थ उपदेश किया है। उस हमारे दयामय पिता परमेश्वर ने बड़ी कृपा से अविद्यान्धकार का नाशक, वेदविद्यारूप सूर्य्य प्रकाशित किया है और सब का आदिकारण परमात्मा है, ऐसा अवश्य मानना चाहिये। ऐसे विद्यापुस्तक का भी आदिकारण ईश्वर को ही निश्चित मानना चाहिये।

विद्या का उपदेश ईश्वर ने अपनी कृपा से किया है, क्योंकि हम लोगों के लिये उसने सब पदार्थों का दान दिया है तो विद्यादान क्यों न करेगा ?

सर्वोत्कृष्ट विद्यापदार्थ का दान परमात्मा ने अवश्य किया तो वेद के विना अन्य कोई पुस्तक संसार में ईश्वरोक्त है। जैसा पूर्ण विद्यावान् और न्यायकारी ईश्वर है वैसा ही पुस्तक भी है। अन्य कोई पुस्तक ईश्वरकृत वेदतुल्य वा अ नहीं है।

अधिक विचार इस विषय का "सत्यार्थप्रकाश" और "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" मेरे किये ग्रन्थों में देख लेना ॥ २ ॥

पदार्थः—(सः) वह परमात्मा (पर्यगात्) आकाश के समान सब जगह में परिपूर्ण=व्यापक है (शुक्रम्) सब जगत् का करने वाला (अकायम्) वह कभी अवतार=शरीर धारण नहीं करता (अव्रणम्) अखण्डैकरस अच्छेद्य अभेद्य निष्कम्प अचल. अंशांशिभाव से रहित (अस्नाविरम्) नाड़ी आदि के प्रतिबन्ध निरोध एवं आवरण रहित (शुद्धम्) निर्मल (अपापविद्धम्) न्यायकारी (कविः) त्रैकालज्ञ=सर्ववित्, महाविद्वान् (मनीषी) सब जीवों के मन=विज्ञान का साक्षी, सबके मन का दमन करने वाला (परिभूः) सब दिशा और सब जगह में परिपूर्ण, सबके ऊपर विराजमान (स्वयंभूः) जिसका आदिकारण कोई नहीं किन्तु वही सबका आदिकारण (याथातथ्यतः) यथावत्

(अर्थात्) सत्य विद्या जो जो वेद उनका (व्यदधात्) सब मनुष्यों से परमहितार्थ उपदेश किया है (शाश्वतीभ्यः) सब (समाभ्यः) प्रजा को ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः । यद् ब्रह्म शुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धं पर्यगाद् । यः कविर्मनीषीः, परिभूः स्वयम्भूः परमात्मा शाश्वतीभ्यः समाभ्यो याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधात् स एव युष्माभिरुपासनीयः ॥

मूल प्रार्थना

दृते दृᳬंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् । मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ ३ ॥ यजु० ३६ । १८ ॥

व्याख्यान—हे अनन्तबल महावीर ईश्वर ! "दृते" हे दुष्टस्वभावनाशक ! विदीर्णकर्म अर्थात् विज्ञानादि शुभ गुणों का नाशकर्म करने वाला मुझको मत रक्खो (मत करो) किन्तु उससे मेरे आत्मादि को विद्या, सत्य धर्मादि शुभगुणों में सदैव अपनी कृपा=सामर्थ्य से स्थित करो ।

"दृᳬंह मा" हे परमैश्वर्यवन् भगवन् ! धर्म्मार्थकाममोक्षादि तथा विज्ञानादि दान से अत्यन्त मुझको बढ़ा ।

"मित्रस्येत्यादि०" हे सर्वसुहृदीश्वर सर्वान्तर्यामिन् ! सब भूत प्राणीमात्र मित्रदृष्टि से यथावत् मुझको देखें सब मेरे मित्र हो जायँ, कोई मुझसे किञ्चिन्मात्र भी वैर न करे ।

"मित्रस्याऽहं, चेत्यादि" हे परमात्मन् ! आप की कृपा से मैं भी निर्वैर हो के सब भूत प्राणी और अप्राणी चराचर जगत् को मित्रदृष्टि से अपने प्राणवत् प्रिय जानूँ, अर्थात् "मित्रस्य, चक्षुषेत्यादि" पक्षपात छोड़ के सब जीव देहधारीमात्र अत्यन्त प्रेम से परस्पर अपना वर्त्ताव करें ।

अन्याय से युक्त होके किसी पर कभी हम लोग न वर्तें । यह परमधर्म का सब मनुष्यों के लिए परमात्मा ने उपदेश किया है, सब को यही मान्य होने के योग्य है ॥ ३ ॥

पदार्थः—(दृते) हे अनन्तबल महावीर दुष्टस्वभाव नाशक

ईश्वर (दृंह) विज्ञानादि दान से अत्यन्त बढ़ा (मा) मुझको (मित्रस्य, मित्र की (चक्षुषा) दृष्टि से (सर्वाणि) सब (भूतानि) भूत=प्राणिमात्र (समीक्षन्ताम्) देखें (मित्रस्य) मित्र की (अहम्) मैं भी निर्वैर होके (चक्षुषा) दृष्टि से (सर्वाणि) सब (भूतानि) चराचर जगत् को (समीक्षे) अपने प्राणवत प्रिय जानूँ (मित्रस्य चक्षुषा) अत्यन्त प्रेम से (समीक्षामहे) पक्षपात छोड़ के सब जीव देहधारी मात्र परस्पर वर्ताव करें ।।

अन्वयः—हे दृते। येन सर्वाणि भूतानि मित्रस्य चक्षुषा मा समीक्षन्ताम्। अहं मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। एवं वयं सर्वे परस्परान् मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे तत्रास्मान् दृंह ।।

हे दृते, हे मनो से विद्वेषादि भावों का विदारण करने वाले प्रभो, आज मैं मैत्री का व्रत ग्रहण कर रहा हूँ उस पर दृढ़ रहने का सामर्थ्य मुझे प्रदान कर दीजिए।
आज से सब भूत मुझे मित्र की दृष्टि से देखें मैं स्वयं सब भूतों को मित्र की दृष्टि से देखता हूँ। इस प्रकार हम सभी एक दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखा करें

मूल स्तुति

तदे॒वाग्निस्तदा॑दि॒त्यस्तद्वा॒युस्तदु॑ च॒न्द्रमाः॑। तदे॒व शु॒क्रं तद्
ब्रह्म॒ ता आप॒ः स प्र॒जाप॑तिः ॥ ४ ॥ यजु० ३२ । १ ॥

व्याख्यान—जो सब जगत् का कारण एक परमेश्वर है, उसी का नाम अग्नि है (ब्रह्माग्निः शतपथे) सर्वोत्तम ज्ञानस्वरूप जानने के योग्य, प्रापणीयस्वरूप और पूज्यतमेत्यादि अग्नि शब्द का अर्थ है। "आदित्यो वै ब्रह्म, वायुर्वै ब्रह्म, चन्द्रमा वै ब्रह्म, शुक्रं हि ब्रह्म, सर्वं जगत्कर्तृ ब्रह्म, ब्रह्म वै बृहत्, आपो वै ब्रह्मेत्यादि" शतपथ तथा ऐतरेय ब्राह्मण के प्रमाण हैं। "तदादित्यः" जिसका कभी नाश न हो और स्वप्रकाशस्वरूप हो, इससे परमात्मा का नाम आदित्य है। "तद्वायुः" सब जगत् का धारण करने वाला, अनन्त बलवान् प्राणों से भी जो प्रियस्वरूप है, इससे ईश्वर का नाम वायु है। पूर्वोक्त प्रमाण से "तदु चन्द्रमाः" जो आनन्दस्वरूप और स्वसेवकों को परमानन्द देने वाला है, इससे पूर्वोक्त प्रकार से चन्द्रमा परमात्मा को जानना। "तदेव, शुक्रम्" वही चेतनस्वरूप ब्रह्म सब जगत् का कर्त्ता है, "तद्ब्रह्म" सो अनन्त चेतन, सबसे बड़ा है और धर्मात्मा स्वभक्तों को अत्यन्त सुख, विद्यादि सद्गुणों से बढ़ाने वाला है, "ता आपः" उसी को सर्वज्ञ चेतन सर्वत्र व्याप्त होने से आप नामक जानना। "स, प्रजापतिः" सो ही सब जगत् का पति (स्वामी) और पालन करनेवाला है; अन्य कोई नहीं। उसी को हम लोग इष्टदेव तथा पालक मानें; अन्य को नहीं ॥ ४ ॥

पदार्थः—(तद्) वह (एव) ही (अग्निः) सब जगत् का कारण एक परमेश्वर, सर्वोत्तम, ज्ञानस्वरूप, जानने के योग्य, प्रापणीयस्वरूप और पूज्यतम (तद्) वह (आदित्यः) अविनाशी, स्वप्रकाशस्वरूप (तद्) वह (वायुः) सब जगत् का धारण करने वाला, अनन्त बलवान्

प्राणों से भी प्रियस्वरूप (तद्) वह (उ) ही (चन्द्रमाः) आनन्दस्वरूप और स्वसेवकों को आनन्द देने वाला (तद्) वह (एव) ही (शुक्रम्) चेतनस्वरूप ब्रह्म जगत् का कर्त्ता (तद्) सो (ब्रह्म) अनन्त, चेतन, सबसे बड़ा (ताः) वह (आपः) सर्वज्ञ, चेतन, सर्वत्र व्याप्त (सः) सो ही (प्रजापतिः) सब जगत् का पति=स्वामी और पालन करने वाला ।।

अन्वयः—हे मनुष्याः । तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद् वायुस्तच्चन्द्रमास्तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स उ प्रजापतिरस्त्येवं यूयं विजानीत ।।

मूल प्रार्थना

ऋचं वाचं प्रपद्ये मनो यजुः प्रपद्ये साम प्राणं प्रपद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्रपद्ये । वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ ॥ ५ ॥

यजु० ३६ । १ ॥

व्याख्यान—हे करुणाकर परमात्मन् ! आप की कृपा से मैं ऋग्वेदादिज्ञानयुक्त होके उसका वक्ता होऊँ, तथा यजुर्वेदाभिप्रायार्थ सहित सत्यार्थ मननयुक्त मन को प्राप्त होऊँ, ऐसे ही सामवेदार्थ निश्चय निदिध्यासन सहित प्राण को सदैव प्राप्त होऊँ। "वागोजः" वाग्बल, वक्तृत्वबल, मनोविज्ञानबल मुझको आप देवें[१] । अन्तर्यामी की कृपा से मैं यथावत् प्राप्त होऊँ "सहौजः" नैरोग्यदृढ़त्वादि गुणयुक्त को मैं आपके अनुग्रह से सदैव प्राप्त होऊँ ।

"मयि, प्राणापानौ" हे सर्वजनबलशरीरजीवनाधार ! प्राण (जिससे कि उर्ध्व चेष्टा होती है) और अपान (अर्थात् जिससे नीचे की चेष्टा होती है) ये दोनों मेरे शरीर में सब इन्द्रिय सब धातुओं की शुद्धि करने तथा नैरोग्य बल पुष्टि सरलगति कराने और मर्मस्थलों की रक्षा करने वाले हों, उनके अनुकूल प्राणादि को प्राप्त होके आप की कृपा से हे ईश्वर ! सदैव सुखयुक्त आपकी आज्ञा और उपासना में तत्पर रहूँ ॥ ५ ॥

पदार्थः—(ऋचम्) ऋग्वेदादि ज्ञानयुक्त होके (वाचम्) उसका वक्ता (प्रपद्ये) होऊँ (मनः) सत्यार्थ मनन युक्त मन को (यजुः) यजुर्वेदाभिप्रायार्थ सहित (प्रपद्ये) प्राप्त होऊँ (साम) सामवेदार्थ निश्चय निदिध्यासन सहित (प्राणम्) प्राण को (प्रपद्ये) सदैव

१. इस वाक्य के साथ चक्षुः श्रोत्रं प्रपद्ये, का अर्थ छूटा हुआ है । मूल द्रष्टव्य ।

प्राप्त होऊँ [(चक्षुः) नेत्रबल को तथा (श्रोत्रम्) कर्ण बल को (प्रपद्ये) प्राप्त होऊँ] (वागोजः) वाग्बल, वक्तृत्व बल मनोविज्ञान बल (सहौजः) शरीर बल नैरोग्य दृढ़त्वादिगुणयुक्त को (मयि) मेरे शरीर में (प्राणापानौ) प्राण और अपान को ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा मयि प्राणापानौ दृढौ भवेतां मम वागोजः प्राप्नुयात् तया ताभ्यां च सहाऽहमोजः प्राप्नुयाम् । ऋचं वाचं प्रपद्ये मनो यजुः प्रपद्ये सामप्राणं प्रपद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्रपद्ये तथा यूयमेतानि प्राप्नुत ॥

मूल स्तुति

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥ ६ ॥
यजु० ३२। १० ॥

व्याख्यान—वह परमेश्वर हमारा "बन्धुः" दुःखनाशक और सहायक है, तथा "जनिता" सब जगत् तथा हम लोगों का भी पालन करने वाला पिता, तथा हम लोगों के कामों की सिद्धि का विधाता पूर्ण काम की सिद्धि करनेवाला वही है। सब जगत् का भी विधाता रचने और धारण करनेवाला एक परमात्मा ही है; अन्य कोई नहीं। "धामानि वेदेत्यादि" "विश्वा" "सब धाम अर्थात् अनेक लोक लोकान्तरों को रच के अनन्त सर्वज्ञता से यथार्थ जानता है।

वह कौन परमेश्वर है कि जिससे देव अर्थात् विद्वान् लोग (विद्वाँसो हि देवाः। शतपथ ब्रा०) अमृत, मरणादि दुःखरहित मोक्षपद में अर्थात् सब दुःखों से छूट के सर्वव्यापी, पूर्णानन्दस्वरूप, परमात्मा को प्राप्त होके परमानन्द में रहते हैं ?

तृतीयेत्यादि एक स्थूल (जगत् पृथिव्यादि), दूसरा सूक्ष्म (आदि-करण, सर्वदोषरहित अनन्तानन्दस्वरूप परब्रह्म उस धाम में "अध्यैरयन्त" धर्मात्मा विद्वान् लोग स्वच्छन्द (स्वेच्छा) से वर्त्तते हैं, सब बाधाओं से छूट के सर्वदा विज्ञानवान् शुद्ध होके देश, काल, वस्तु परिच्छेदरहित सर्वगत "धामन्" आधारस्वरूप परमात्मा में रहते हैं, उससे जन्म-मरणादि दुःखसागर में नहीं गिरते ॥ ६ ॥

पदार्थः—(सः) वह परमेश्वर (नः) हमारा (बन्धुः) दुःख-नाशक और सहायक (जनिता) सब जगत् तथा हम लोगों का भी

पालन करने वाला पिता (सः) वह (विधाता) कामों की सिद्धि करने वाला एक परमात्मा (धामानि) अनेक लोक लोकान्तरों को (वेद) यथार्थ जानता है (भुवनानि) लोकान्तरों को (विश्वा) सब (यत्र) जिससे (देवाः) विद्वान् लोग (अमृतम्) मोक्ष पद को (आनशानाः) प्राप्त हो के (तृतीये) तृतीय परब्रह्म में (धामन्) आधारस्वरूप परमात्मा में (अध्यैरयन्त) धर्मात्मा विद्वान् लोग स्वच्छन्द=स्वेच्छा से वर्त्तते हैं ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यत्र तृतीये धामन्नमृतमानशाना देवा अध्यैरयन्त यो विश्वा भुवनानि धामानि च वेद स नो बन्धुर्जनिता स विधाताऽस्तीति निश्चिनुत ॥

मूल प्रार्थना

यतो॑ यतः स॒मीह॑से ततो॑ नो॒ अभ॑यं कुरु। शं नः॑ कुरु प्र॒जाभ्योऽभ॑यं नः प॒शुभ्यः॑ ॥ ७ ॥ यजु० ३६ । २२ ॥

व्याख्यान—हे महेश्वर, दयालो ! जिस जिस देश से आप "समीहसे" सम्यक् चेष्टा करते हो उस उस देश से हमको अभय करो, अर्थात् जहाँ जहाँ से हमको भय प्राप्त होने लगे वहाँ वहाँ से सर्वथा हम लोगों को अभय (भयरहित) करो, तथा प्रजा से हमको सुख करो। हमारी प्रजा सब दिन सुखी रहे, भय देनेवाली कभी न हो, तथा पशुओं से भी हम को अभय करो। किञ्च—किसी से किसी प्रकार का भय हम लोगों को आप की कृपा से कभी न हो। जिससे हम लोग निर्भय होके सदैव परमानन्द को भोगें और निरन्तर आपका राज्य तथा आपकी भक्ति करें ॥ ७ ॥

पदार्थः—(यतः+यतः) जिस जिस देश से (समीहसे) सम्यक् चेष्टा करते हो (ततः) उस उस देश से (नः) हमको (अभयम्) भय-रहित (कुरु) करो (शम्) सुख (नः) हमको (कुरु) करो (प्रजाभ्यः) प्रजा से (अभयम्) भयरहित (नः) हमको (पशुभ्यः) पशुओं से ॥

अन्वयः—हे भगवन्नीश्वर ! त्वं कृपाकटाक्षेण यतो यतः समीहसे ततो नोऽभयं कुरु। नः प्रजाभ्यो नः पशुभ्यश्च शम् अभयं च कुरु ॥

मूल स्तुति

वेदा॒हमे॒तं पुरु॑षं म॒हान्त॑मादि॒त्यव॑र्णं॒ तम॑सः प॒रस्ता॑त् । तमे॑व वि॑दि॒त्वाति॑मृ॒त्युमे॑ति॒ नान्यः पन्था॑ वि॑द्य॒तेऽय॑नाय ॥ ८ ॥

यजु० ३१ । १८ ॥

व्याख्यान—सहस्रशीर्षादि विशेषणोक्त पुरुष सर्वत्र परिपूर्ण (पूर्णत्वात्पुरि शयनाद्वा पुरुष इति निरुक्तोक्तेः) है, उस पुरुष को मैं जानता हूँ, अर्थात् सब मनुष्यों को उचित है कि उस परमात्मा को अवश्य जानें, उसको कभी न भूलें, अन्य किसी को ईश्वर न जानें। वह कैसा है कि "महान्तम्" बड़ों से भी बड़ा उससे बड़ा वा तुल्य कोई नहीं है। "आदित्यवर्णम्" आदित्यादि का रचक और प्रकाशक वही एक परमात्मा है, तथा वह सदा स्वप्रकाशस्वरूप ही है। किंच "तमसः परस्तात्" तम जो अन्धकार अविद्यादि दोष उससे रहित ही है, तथा स्वभक्त, धर्मात्मा सत्यप्रेमी जनों को भी अविद्यादि दोषरहित सद्यः करनेवाला वही परमात्मा है।

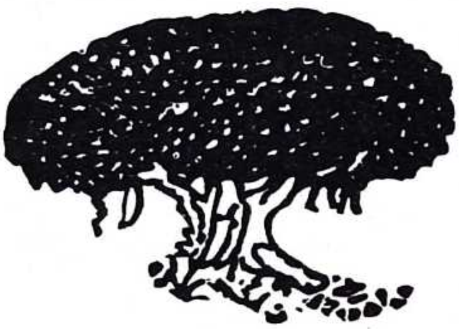
विद्वानों को ऐसा निश्चय है कि परब्रह्म के ज्ञान और उस ी कृपा के विना कोई जीव कभी सुखी नहीं होता। "तमेव विदित्वेत्यादि०" उस परमात्मा को जान के जीव मृत्यु को उल्लङ्घन कर सकता है, अन्यथा नहीं, क्योंकि "नाऽन्यः, पन्था, विद्यतेऽयनाय" विना परमेश्वर की भक्ति और उसके ज्ञान के मुक्ति का मार्ग कोई नहीं है; ऐसी परमात्मा की दृढ़ आज्ञा है।

सब मनुष्यों को इसमें वर्त्तना चाहिए और सब पाखण्ड और जंजाल अवश्य छोड़ देना चाहिये ॥ ८ ॥

पदार्थः—(वेद) जानता हूँ (अहम्) मैं (एतम्) उस को (पुरुषम्) सहस्रशीर्षादि विशेषणोक्त, सर्वत्र परिपूर्ण पुरुष को

(महान्तम्) बड़ों से भी बड़े को (आदित्यवर्णम्) आदित्यादि के रचक, प्रकाशक, सदा प्रकाशस्वरूप को (तमसः) अन्धकार, अविद्यादि दोष से (परस्तात्) रहित (तम्) उसको (एव) ही (विदित्वा) जान के (मृत्युम्) मृत्यु को (अत्येति) जीव उल्लंघन कर सकता है (न) नहीं (अन्यः) कोई/विना (पन्थाः) मुक्ति का मार्ग (विद्यते) है (अयनाय) परमेश्वर की भक्ति और उसके ज्ञान के ॥

अन्वयः—हे जिज्ञासो ! अहं यमेतं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् वर्त्तमानं पुरुषं वेद तमेव विदित्वा भवान् मृत्युमत्येति । अन्यः पन्था अयनाय न विद्यते ।



मूल प्रार्थना

तेजो॑ऽसि॒ तेजो॒ मयि॑ धेहि । वी॒र्य॑मसि वी॒र्यं॑ मयि॑ धेहि ।
बल॑मसि॒ बलं॒ मयि॑ धेहि । ओजो॒ऽस्योजो॒ मयि॑ धेहि ।
म॒न्युर॑सि म॒न्युं मयि॑ धेहि । सहो॑ऽसि॒ सहो॒ मयि॑ धेहि ॥९॥

यजु० १९ । ९ ॥

व्याख्यान—हे स्वप्रकाश, अनन्त तेज ! आप अविद्यान्धकार से रहित हो, किंच—सत्य विज्ञान तेजस्वरूप हो, आप कृपादृष्टि से मुझ में वही तेज धारण करो जिससे मैं निस्तेज, दीन और भीरु कहीं कभी न होऊँ ।

हे अनन्त वीर्य परमात्मन् ! आप वीर्यस्वरूप हो, आप सर्वोत्तम बल स्थिर मुझ में भी रक्खें ।

हे अनन्तपराक्रम ! आप ओजः (पराक्रमस्वरूप) हो सो मुझ में भी उस पराक्रम को सदैव धारण करो ।

हे दुष्टानामुपरि क्रोधकृत् ! मुझमें भी दुष्टों पर क्रोध धारण कराओ ।

हे अनन्त सहनस्वरूप ! मुझ में भी आप सहनसामर्थ्य धारण करो अर्थात् शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा इनके तेजादि गुण कभी मुझ में से दूर न हों, जिससे मैं आप की भक्ति का स्थिर अनुष्ठान करूँ और आप के अनुग्रह से संसार में भी सदा सुखी रहूँ ॥ ९ ॥

पदार्थः—(तेजः) हे स्वप्रकाश अनन्त तेज ! आप अविद्यान्धकार से रहित (असि) हो (तेजः) वही तेज (मयि) मुझमें (धेहि) धारण करो (वीर्यम्) हे अनन्तवीर्य परमात्मन् ! आप वीर्यस्वरूप (असि) हो (वीर्यम्) सर्वोत्तम बल (मयि) मुझ में भी (धेहि) स्थिर

(महान्तम्) बड़ों से भी बड़े को (आदित्यवर्णम्) आदित्यादि के रचक, प्रकाशक, सदा प्रकाशस्वरूप को (तमसः) अन्धकार, अविद्यादि दोष से (परस्तात्) रहित (तम्) उसको (एव) ही (विदित्वा) जान के (मृत्युम्) मृत्यु को (अत्येति) जीव उल्लंघन कर सकता है (न) नहीं (अन्यः) कोई/विना (पन्थाः) मुक्ति का मार्ग (विद्यते) है (अयनाय) परमेश्वर की भक्ति और उसके ज्ञान के ॥

अन्वयः—हे जिज्ञासो ! अहं यमेतं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् वर्त्तमानं पुरुषं वेद तमेव विदित्वा भवान् मृत्युमत्येति । अन्यः पन्था अयनाय न विद्यते ।



मूल प्रार्थना

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि । वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि ।
बलमसि बलं मयि धेहि । ओजोऽस्योजो मयि धेहि ।
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि । सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥९॥
यजु० १९ । ९ ॥

व्याख्यान—हे स्वप्रकाश, अनन्त तेज ! आप अविद्यान्धकार से रहित हो, किंच—सत्य विज्ञान तेजस्वरूप हो, आप कृपादृष्टि से मुझ में वही तेज धारण करो जिससे मैं निस्तेज, दीन और भीरु कहीं कभी न होऊँ ।

हे अनन्त वीर्य परमात्मन् ! आप वीर्यस्वरूप हो, आप सर्वोत्तम बल स्थिर मुझ में भी रक्खें ।

हे अनन्तपराक्रम ! आप ओजः (पराक्रमस्वरूप) हो सो मुझ में भी उस पराक्रम को सदैव धारण करो ।

हे दुष्टानामुपरि क्रोधकृत् ! मुझमें भी दुष्टों पर क्रोध धारण कराओ ।

हे अनन्त सहनस्वरूप ! मुझ में भी आप सहनसामर्थ्य धारण करो अर्थात् शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा इनके तेजादि गुण कभी मुझ में से दूर न हों, जिससे मैं आप को भक्ति का स्थिर अनुष्ठान करूँ और आप के अनुग्रह से संसार में भी सदा सुखी रहूँ ।। ९ ।।

पदार्थः—(तेजः) हे स्वप्रकाश अनन्त तेज ! आप अविद्यान्धकार से रहित (असि) हो (तेजः) वही तेज (मयि) मुझमें (धेहि) धारण करो (वीर्यम्) हे अनन्तवीर्य परमात्मन् ! आप वीर्यस्वरूप (असि) हो (वीर्यम्) सर्वोत्तम बल (मयि) मुझ में भी (धेहि) स्थिर

रखो [(बलम्) हे अनन्तबल परमात्मन् ! आप बलस्वरूप (असि) हो (बलम्) उत्तम बल (मयि) मुझ में भी (धेहि) धारण करो] (ओजः) हे अनन्तपराक्रम ! आप पराक्रमस्वरूप (असि) हो (ओजः) उस पराक्रम को (मयि) मुझ में भी (धेहि) सदैव धारण करो (मन्युः) हे दुष्टों पर क्रोध करने वाले आप मन्यु (असि) हो (मन्युम्) दुष्टों पर क्रोध को (मयि) मुझ में भी (धेहि) धारण कराओ (सहः) हे अनन्त-सहनस्वरूप आप अनन्त सहनशक्ति वाले (असि) हो (सहः) सहन-सामर्थ्य को (मयि) मुझ में भी (धेहि) धारण करो ॥

अन्वयः—हे शुभगुणकर राजन् ! यत् त्वयि तेजोऽस्यस्ति तत्तेजो मयि धेहि यत् त्वयि वीर्यमसि तद्वीर्यं मयि धेहि यत् त्वयि बलमसि तद् बलं मयि धेहि यत् त्वय्योजोऽसि तदोजो मयि धेहि यत्त्वयि मन्युरसि तन्मन्युं मयि धेहि यत्त्वयि सहोऽसि तत्सहो मयि धेहि ॥

मूल स्तुति

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च । उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभि संविवेश ॥ १० ॥ यजु० ३२ । ११ ॥

व्याख्यान—सब जीवों में (अर्थात् आकाश और प्रकृति से लेके पृथिवीपर्यन्त सब संसार में) वह परमेश्वर व्याप्त होके परिपूर्ण भर रहा है, तथा सब लोक, सब पूर्वादि दिशा और ऐशान्यादि उपदिशा, ऊपर, नीचे अर्थात् एक कण भी उसके विना अपर्याप्त (खाली) नहीं ।

"प्रथमजाम्" प्रथमोत्पन्न जीव, सब संसार से आदि कार्य जीव को ही समझना सो जीव अपने आत्मा से अत्यन्त सत्याचरण, विद्या, श्रद्धा, भक्ति से "ऋतस्य" यथार्थ सत्यस्वरूप परमात्मा को "उपस्थाय" यथावत् जान, उपस्थित (निकट प्राप्त) "अभिसंविवेश" अभिमुख होके उसमें प्रविष्ट अर्थात् परमानन्दस्वरूप परमात्मा में प्रवेश करके, सब दुःखों से छूट, उसी परमानन्द में रहता है ॥ १० ॥

पदार्थः—(परीत्य) व्याप्त हो के (भूतानि) सब भूत, आकाश और प्रकृति से ले के पृथिवी पर्यन्त सब संसार में (परीत्य) व्याप्त हो के (लोकान्) सब लोक (परीत्य) एक कण भी उसके विना अपर्याप्त (खाली) नहीं (सर्वाः) सब (प्रदिशः) ऐशान्यादि उपदिशा (दिशः) सब पूर्वादिदिशा (च) और (उपस्थाय) यथावत् जानकर उपस्थित (निकट प्राप्त) (प्रथमजाम्) मुख्य प्राणी (ऋतस्य) यथार्थ सत्यस्वरूप परमात्मा को (आत्मना) अपने आत्मा से, अत्यन्त सत्याचरण, विद्या श्रद्धा भक्ति से (आत्मानम्) परमानन्दस्वरूप परमात्मा

में (अभिसंविवेश) प्रवेश करके सब दुःखों से छूट उसी परमानन्द में रहता है ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! त्वं यो भूतानि परीत्य लोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च परीत्य ऋतस्यात्मानमभिसंविवेश । प्रथमजामुपस्थायात्मना तं प्राप्नुहि ॥

मूल प्रार्थना

**भग॒ प्रणे॑त॒र्भग॒ सत्य॑राधो॒ भगे॒मां धिय॒मुद॑वा॒ दद॑न्नः ।
भग॒ प्र नो॑ जनय॒ गोभि॒रश्वै॒र्भग॒ प्र नृभि॑र्नृ॒वन्तः॑ स्याम ॥ ११ ॥**

यजु० ३४ । ३६ ॥

व्याख्यान—हे भगवन् ! परमैश्वर्यवन् ! भग ऐश्वर्य के दाता, संसार वा परमार्थ में आप ही हो, तथा "भगप्रणेत:" आप के ही स्वाधीन सकल ऐश्वर्य है; अन्य किसी के आधीन नहीं। आप जिसको चाहो उसको ऐश्वर्य देओ, सो आप कृपा से हम लोगों का दारिद्रय छेदन करके हम को परमैश्वर्यवाले करें, क्योंकि ऐश्वर्य के प्रेरक आप ही हो। हे "सत्यराध:" भगवन् ! सत्यैश्वर्य की सिद्धि करनेवाले आप ही हो, सो आप नित्य ऐश्वर्य हम को दीजिये, तथा जो मोक्ष कहाता है उस सत्य ऐश्वर्य का दाता आप से भिन्न कोई भी नहीं है। हे सत्यभग ! पूर्ण ऐश्वर्य, सर्वोत्तम बुद्धि हम को आप दीजिये जिससे हम लोग आप के गुण और आपकी आज्ञा का अनुष्ठान ज्ञान इन को यथावत् प्राप्त हों। हमको सत्यबुद्धि, सत्यकर्म और सत्यगुणों को "उदव:" (उद्गमय प्रापय) प्राप्त कर, जिससे हम लोग सूक्ष्म से भी सूक्ष्म पदार्थों को यथावत् जानें।

"भग प्रनो जनय" हे सर्वैश्वर्योत्पादक ! हमारे लिये ऐश्वर्य को अच्छे प्रकार से उत्पन्न कर, सर्वोत्तम गाय, घोड़े और मनुष्य इनसे सहित अत्युत्तम ऐश्वर्य हम को सदा के लिये दीजिये।

हे सर्वशक्तिमन् ! आपकी कृपा से सब दिन हम लोग उत्तम-उत्तम पुरुष स्त्री और सन्तान भृत्यवाले हों। आप से यह हमारी अधिक प्रार्थना है कि कोई मनुष्य हम में दुष्ट और मुर्ख न रहे, न उत्पन्न हो, जिससे हम लोगों की सर्वत्र सत्कीर्त्ति हो, निन्दा कभी न हो ॥ ११ ॥

पदार्थः—(भगप्रणेतः) ऐश्वर्य के प्रेरक (भग) हे भगवन् परमैश्वर्यवन् ! (सत्यराधः) सत्य ऐश्वर्य की सिद्धि करने वाले तथा मोक्ष=सत्य ऐश्वर्य के देने वाले हो (भग) हे सत्य भग ! (इमाम्) इनको (धियम्) सर्वोत्तम बुद्धि/सत्य बुद्धि सत्यकर्म सत्य गुणों को (उदवः) प्राप्त कर (ददत्) दीजिये (नः) हम को (भग) हे सर्वैश्वर्योत्पादक (प्र) अच्छे प्रकार (नः) हमारे लिये (जनय) ऐश्वर्य को उत्पन्न कर (गोभिः) सर्वोत्तम गायों सहित (अश्वैः) सर्वोत्तम घोड़ों सहित (भग) हे सर्वशक्तिमन् ! (प्र) अधिक प्रार्थना है (नृभिः) सर्वोत्तम मनुष्यों सहित (नृवन्तः) उत्तम उत्तम पुरुष स्त्री और सन्तान; भृत्य वाले हम लोग (स्याम) हों ।।

अन्वयः—हे भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भग ! त्वं नोऽस्माकमिमां धियं ददत्सदुदव । हे भग ! त्वं गोभिरश्वैर्नृभिस्सह नोऽस्मान् प्रजनय । हे भग ! ये वयं नृवन्तः प्रस्याम तथा विधेहि ।।

मूल स्तुति

तदे॑जति॒ तन्नैज॑ति॒ तद्दू॒रे तद्व॑न्ति॒के । तद॒न्तर॑स्य॒ सर्व॑स्य॒ तदु॒ सर्व॑स्यास्य बाह्य॒तः ॥ १२ ॥ यजु० ४० । ५ ॥

व्याख्यान—"तद् एजति" वह परमात्मा सब जगत् को यथायोग्य अपनी-अपनी चाल पर चला रहा है, सो अविद्वान् लोग ईश्वर में भी आरोप करते हैं कि वह भी चलता होगा, परन्तु वह सब में पूर्ण है, कभी चलायमान नहीं होता, अतएव "तन्नैजति" (यह प्रमाण है) स्वतः वह परमात्मा कभी नहीं चलता, एकरस निश्चल होके भरा है। विद्वान् लोग इसी रीति से ब्रह्म को जानते हैं।

"तद्दूरे" अधर्मात्मा, अविद्वान्, विचारशून्य, अजितेन्द्रिय, ईश्वर-भक्तिरहित इत्यादि दोषयुक्त मनुष्यों से वह ईश्वर बहुत दूर है, अर्थात् वे कोटि-कोटि वर्ष तक उस को नहीं प्राप्त होते इससे वे तबतक जन्म-मरणादि दुःखसागर में इधर उधर घूमते फिरते हैं कि जबतक उसको नहीं जानते। "तद्वन्तिके" सत्यवादी, सत्यकारी, सत्यमानी, जितेन्द्रिय, सर्वजनोपकारक विद्वान् विचारशील पुरुषों के "अन्तिके" अत्यन्त निकट है।

किंच—वह सब के आत्माओं के बीच में अन्तर्यामी, व्यापक होके सर्वत्र पूर्ण भर रहा है। वह आत्मा का भी आत्मा है, क्योंकि परमेश्वर सब जगत् के भीतर और बाहर तथा मध्य अर्थात् एक तिलमात्र भी उसके विना खाली नहीं है। वह अखण्डैकरस सब में व्यापक हो रहा है उसी को जानने से सुख और मुक्ति होती है, अन्यथा नहीं ॥ १२ ॥

पदार्थः—(तद्) वह परमात्मा (एजति) सब जगत् को अपनी-अपनी चाल पर चला रहा है (तत्) वह परमात्मा (न) कभी

नहीं (एजति) चलता है (तद्) वह ईश्वर (दूरे) अधर्मात्मा आदि मनुष्यों से बहुत दूर है (तद्) वह परमात्मा (अन्तिके) सत्यवादी आदि पुरुषों के अत्यन्त निकट है (तद्) वह परमेश्वर (अन्तः) भीतर (अस्य) इस (सर्वस्य) सब जगत् के (तदु) और वह (सर्वस्य) सब जगत् के (अस्य) इस (बाह्यतः) बाहर ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः! तद्ब्रह्मेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके तदस्य सर्वस्यान्तस्तदु सर्वस्यास्य बाह्यतो वर्त्तत इति निश्चिनुत ॥

२

मूल प्रार्थना

आयुर्य॒ज्ञेन॑ कल्पतां प्रा॒णो य॒ज्ञेन॑ कल्पतां॒ चक्षु॒र्य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ᳪ श्रोत्रं॑ य॒ज्ञेन॑ कल्पतां॒ वाग्य॒ज्ञेन॑ कल्पतां॒ मनो॑ य॒ज्ञेन॑ कल्पतामा॒त्मा य॒ज्ञेन॑ कल्पतां ब्र॒ह्मा य॒ज्ञेन॑ कल्पतां॒ ज्योति॑र्य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ᳪ स्व॒र्य॒ज्ञेन॑ कल्पतां पृ॒ष्ठं य॒ज्ञेन॑ कल्पतां य॒ज्ञो य॒ज्ञेन॑ कल्पताम् । स्तोम॑श्च यजु॑श्च ऋक् च॒ साम॑ च बृ॒हच्च॑ रथन्त॒रं च॑ । स्व॑र्दे॒वाऽअगन्मा॒मृता॑ऽअभूम प्र॒जाप॑तेः प्र॒जाऽअभूम वेट् स्वाहा॑ ॥ १३ ॥

यजु० १८ । २९ ॥

व्याख्यान—(यज्ञो वै विष्णुः, यज्ञो वै ब्रह्मेत्याद्यैतरेय-शतपथब्राह्मणश्रु०) यज्ञ=यजनीय जो सब मनुष्यों का पूज्य इष्टदेव परमेश्वर उसके अर्थ तथा उसके संग अतिश्रद्धा से यज्ञ जो परमात्मा उसके लिए सब मनुष्य सर्वस्व समर्पण यथावत् करें। यही इस मन्त्र में उपदेश और प्रार्थना है कि हे सर्वस्वामिन् ईश्वर! जो यह आप की आज्ञा है कि सब लोग सब पदार्थ मेरे अर्पण करें, इस कारण हम लोग "आयुः" उमर, प्राण, चक्षु (आंख), कान, वाणी, मन, आत्मा=जीव, ब्रह्मा=वेदविद्या और विद्वान्, ज्योति (सूर्यादि लोक अग्न्यादि पदार्थ), स्वर्ग (सुखसाधन), पृष्ठ (पृथिव्यादि सब लोक आधार) तथा पुरुषार्थ, यज्ञ (जो जो अच्छा काम हम लोग करते हैं), स्तोम=स्तुति, यजुर्वेद, ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, बृहद्रथन्तर, महारथन्तर साम इत्यादि सब पदार्थ आप के समर्पण करते हैं।

हम लोग तो केवल आप के ही शरण हैं जैसे आप की इच्छा हो वैसा हमारे लिये आप कीजिये, परन्तु हम लोग आप के सन्तान आ की कृपा से "स्वरगन्म" उत्तम सुख को प्राप्त हों जबतक जीवें तब

तक सदा चक्रवर्त्ती राज्यादि भोग से सुखी रहें और मरणानन्तर भी हम सुखी ही रहें।

हे महादेवामृत ! हम लोग देव (परमविद्वान्) हों, तथा अमृत=मोक्ष जो आप की प्राप्ति, उसको प्राप्त हों। "वेट्स्वाहा" आप की आज्ञा का पालन और आप की प्राप्ति में उद्योगी हों, तथा अन्तर्यामी आप हृदय में आज्ञा करो अर्थात् जैसा हमारे हृदय में ज्ञान हो वैसा ही सदा भाषण करें; इससे विपरीत कभी नहीं।

हे कृपानिधे ! हम लोगों का योगक्षेम (सब निर्वाह) आप ही सदा करो। आप के सहाय से सर्वत्र हम को विजय और सुख मिले ॥ १३ ॥

पदार्थः—(आयुः) उमर (यज्ञेन) परमेश्वर के अर्थ (कल्पताम्) अति श्रद्धा से समर्पित है (प्राणः) प्राण (चक्षुः) आँख (श्रोत्रम्) कान (वाक्) वाणी (मनः) मन (आत्मा) जीव (ब्रह्मा) वेदविद्या और विद्वान् (ज्योतिः) सूर्यादिलोक, अग्न्यादिपदार्थ (स्वः) स्वर्ग=सुख साधन (पृष्ठम्) पृथिवी आदि सब लोक आधार तथा पुरुषार्थ (यज्ञः) यज्ञ=जो जो अच्छा काम हम लोग करते हैं (स्तोमः) स्तुति (च) और (यजुः) यजुर्वेद (च) और (ऋक्) ऋग्वेद (च) और (साम) सामवेद (च) अथर्ववेद (बृहच्च रथन्तरं च) बृहद्रथन्तर साम (च) इत्यादि (स्वः) उत्तम सुख को (देवाः) हम विद्वान् लोग (अगन्म) प्राप्त हों (अमृताः) परम विद्वान् तथा अमृत जो आपकी प्राप्ति उसको प्राप्त (अभूम) हों (प्रजापतेः) आपके (प्रजाः) सन्तान हम लोग (अभूम) हों (वेद) आपकी आज्ञा का पालन और आप की प्राप्ति में उद्योगी (स्वाहा) जैसा हमारे हृदय में ज्ञान हो वैसा ही सदा भाषण करें ॥

अन्वयः—हे मनुष्य ! ते तव प्रजानामाधिपत्यायायुर्यज्ञेन

ल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पेतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पतां श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां
ाग् यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा
ज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पतां स्वर्यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन
ल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पतां स्तोमश्च यजुश्च ऋक् च साम च बृहच्च
थन्तरं च यज्ञेन कल्पताम्। हे देवा विद्वांस:! यथा वयममृता:
रगन्म प्रजापते: प्रजा अभूम वेट् स्वाहायुक्ताश्चाभूम तथा यूयमपि
वत॥

मूल स्तुति

यस्मान्न जातः परोऽअन्योऽअस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा। प्रजापतिः प्रजया संꣳरराणस्त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी ॥ १४ ॥ यजु० ८ । ३६ ॥

व्याख्यान—जिससे बड़ा, तुल्य वा श्रेष्ठ न हुआ, न है और न कोई कभी होगा, उसको परमात्मा कहना। जो "विश्वा भुवानानि" सब भुवन (लोक) सब पदार्थों के निवासस्थान असंख्यात लोकों को आविवेश=प्रविष्ट हो के पूर्ण हो रहा है, वही ईश्वर प्रजा का पति (स्वामी) है। सब प्रजा को रमा रहा और सब प्रजा में रम रहा है। "त्रीणीत्यादि" तीन ज्योति=अग्नि, वायु और सूर्य इनको जिसने रचा है, सब जगत् के व्यवहार और पदार्थविद्या की उत्पत्ति के लिये इन तीनों को मुख्य समझना। "स षोडशी" सोलहकला जिसने उत्पन्न की हैं, इससे सोलह कलावान् ईश्वर कहाता है। वे सोलह-कला ये हैं—ईक्षण (विचार) १ प्राण २ श्रद्धा ३ आकाश ४ वायु ५ अग्नि ६ जल ७ पृथिवी ८ इन्द्रिय ९ मन १० अन्न ११ वीर्य (पराक्रम) १२ तप (धर्मानुष्ठान) १३ मन्त्र (वेदविद्या) १४ कर्मलोक (चेष्टा-स्थान १५ लोक और नाम १६, इतनी कलाओं के बीच में सब जगत् है, और परमेश्वर में अनन्त कला हैं।

उसकी उपासना छोड़ के जो दूसरे की उपासना करता है, वह सुख को प्राप्त कभी नहीं होता किन्तु सदा दुःख में ही पड़ा रहता है ॥१४॥

पदार्थः—(यस्मात्) जिससे (न) नहीं (जात) हुआ (परः) बड़ा / श्रेष्ठ (अन्यः) कोई (अस्ति) है (यः) जो (आविवेश) आवेश=

प्रविष्ट होके पूर्ण हो रहा है (भुवनानि) भुवन=लोकों को (विश्वा) सब (प्रजापतिः) प्रजा का स्वामी है (प्रजया) सब प्रजा को/सब प्रजा में (सꣳरराणः) रमा रहा है/रम रहा है (त्रीणि) तीन (ज्योतीꣳषि) ज्योति अग्नि वायु और सूर्य को (सचते) रचा है (सः) वह (षोडशी) सोलह कलावान् ईश्वर ॥

अन्वयः—यस्मात् परोऽन्यो न जातः किञ्च यो विश्वा भुवनान्याविवेश, स प्रजापतिः प्रजया संरराणः षोडशी त्रीणि ज्योतींषि सचते ॥

मूल स्तुति

स नः पितेवं सूनवेऽग्नें सूपायनो भंव । सचंस्वा नः स्वस्तयें ॥ १५ ॥ यजु० ३ । २४ ॥

व्याख्यान—(ब्रह्महृग्निः, इत्यादि शतपथादिप्रामाण्याद् ब्रह्मैवात्राग्निर्ग्राह्यः) हे विज्ञानस्वरूपेश्वराग्ने ! आप हमारे लिये "सूपायनः" सुख से प्राप्त श्रेष्ठोपाय के प्रापक, अत्युत्तम स्थान के दाता कृपा से सर्वदा हो, तथा रक्षक भी हमारे आप ही हो। हे स्वस्तिद परमात्मन् ! सब दुःखों का नाश करके हमारे लिये सुख का वर्त्तमान सदैव कराओ, जिससे हमारा वर्त्तमान श्रेष्ठ ही हो।

"स नः पितेव सूनवे" जैसे करुणामय पिता अपने पुत्र को सुखी ही रखता है, वैसे आप हम को सदा सुखी रक्खो, क्योंकि जो हम लोग बुरे होंगे तो उसमें आप की शोभा नहीं होना। किञ्च—सन्तानों को सुधारने से ही पिता की शोभा और बड़ाई होती है; अन्यथा नहीं ॥१५ ॥

पदार्थः—(सः) आप (नः) हमारे लिये/हमको (पिता) करुणामय पिता (इव) जैसे (सूनवे) अपने पुत्र को (अग्ने) हे विज्ञानस्वरूपेश्वराग्ने ! (सूपायनः) श्रेष्ठोपाय के प्रापक, अत्युत्तम स्थान के दाता (भव) सर्वदा हो (सचस्व) सदा सुखी रखो (नः) हमारे लिये (स्वस्तये) हे स्वस्तिद परमात्मन् ! सब दुःखों का नाश करके ॥

अन्वयः—हे अग्ने जगदीश्वर ! यस्त्वं कृपया सूनवे पितेव नोऽस्मभ्यं सूपायनो भवसि, स त्वं नोऽस्मान् स्वस्तये सततं सचस्व संयोजय ॥

मूल स्तुति

विभूरसि प्रवाहणः। वह्निरसि हव्यवाहनः। श्वात्रोऽसि प्रचेतास्तुथोऽसि विश्ववेदाः ॥ १६ ॥ यजु० ५ । ३१ ॥

उशिगसि कविः। अङ्घारिरसि बम्भारिः। अवस्यूरसि दुवस्वान्। शुन्ध्यूरसि मार्जालीयः सम्राडसि कृशानुः। परिषद्योऽसि पवमानः। नभोऽसि प्रतक्वा। मृष्टोऽसि हव्यसूदनः ऋतधामासि स्वर्ज्योतिः ॥ १७ ॥ यजु० ५ । ३२ ॥

समुद्रोऽसि विश्वव्यचाः। अजोऽस्येकपात्। अहिरसि बुध्न्यः। वागस्यैन्द्रमसि ऽदोसि। ऋतस्य द्वारौ मा मा सन्ताप्तम्। अध्वनामध्वपते प्र मा तिर स्वस्ति मेऽस्मिन् पथि देवयाने भूयात् ॥ १८ ॥ यजु० ५ । ३३ ॥

व्याख्यान—हे व्यापकेश्वर! आप विभु हो अर्थात् सर्वत्र प्रकाशित वैभवैश्वर्ययुक्त हो किन्तु और कोई नहीं, विभु आप सब जगत् के प्रवाहण (स्वस्वनियमपूर्वक चलाने वाले) तथा सब के निर्वाहकारक भी हो। हे स्वप्रकाशक सर्वरसवाहकेश्वर! आप वह्नि हैं अर्थात् सब हव्य उत्कृष्ट रसों के भेदक आकर्षक तथा यथावत् स्थापक हो। हे आत्मन्! आप शीघ्र व्यापनशील हो तथा पकृष्ट ज्ञानस्वरूप प्रकृष्ट ज्ञान के देनेवाले हो। हे सर्ववित्! आपतुथ और विश्ववेदा हो, "तुथो वै ब्रह्म" (यह शतपथ की श्रुति है) सब जगत् में विद्यमान प्राप्त और लाभ करानेवाले हो ॥ १६ ॥

हे सर्वप्रिय! आप "उशिक्" कमनीयस्वरूप अर्थात् सब लोग

जिसको चाहते हैं, क्योंकि आप कवि पूर्ण विद्वान् हो, तथा आप अङ्घारि हो अर्थात् स्वभक्तों का जो अघ (पाप) उसके अरि (शत्रु) हो उस समस्त पाप के नाशक हो, तथा "बम्भारिः" स्वभक्तों और सब जगत् के पालन तथा धारण करने वाले हो "अवस्यूरसि दुवस्वान्" अन्नादि पदार्थ अपने भक्तों धर्मात्माओं को देने की इच्छा सदा करते हो, तथा परिचरणीय=विद्वानों से सेवनीयतम हो। "शुन्ध्यूरसि मार्ज्जालीयः" शुद्धस्वरूप और सब जगत् के शोधक तथा पापों का मार्जन (निवारण) करने वाले आप ही हो; अन्य कोई नहीं। "सम्राडसि कृशानुः" सब राजाओं के महाराज तथा कृश=दीनजनों के प्राण के सुखदाता आप ही हो "परिषद्योसि पवमानः" हे न्यायकारिन्! पवित्र परमेश्वर सभा के आज्ञापक, सभ्य, सभापति, सभाप्रिय, सभारक्षक आप ही हो तथा पवित्रस्वरूप, पवित्रकारक सभा से ही सुखदायक, पवित्रप्रिय आप ही हो। "नभोऽसि प्रतक्वा" हे निर्विकार! आकाशवत् आप क्षोभरहित अतिसूक्ष्म होने से आपका नाम नभ है, तथा "प्रतक्वा" सब के ज्ञाता, सत्यासत्यकारी जनों के कर्मों को साक्ष्य रखने वाले कि जिसने जैसा पाप वा पुण्य किया हो उस को वैसा फल मिले, अन्य का पुण्य वा पाप अन्य को कभी न मिले। "मृष्टोसि हव्यसूदनः" मृष्ट शुद्धस्वरूप सब पापों के मार्जक शोधक तथा "हव्यसूदनः" मिष्ट, सुगन्ध, रोगनाशक, पुष्टिकारक इन द्रव्यों से वायु वृष्टि की शुद्धि करने कराने वाले हो। अतएव सब द्रव्यों के विभागकर्त्ता आप ही हो इससे आपका नाम "हव्यसूदन" है। "ऋतधामासि स्वर्ज्योतिः" हे भगवन्! आपका ही धाम=स्थान सर्वगत सत्य और यथार्थस्वरूप है, यथार्थ (सत्य) व्यवहार में ही आप निवास करते हो मिथ्या में नहीं। "स्वः" आप सुखस्वरूप और सुखकारक हो तथा "ज्योतिः" स्वप्रकाश और सब के प्रकाशक आप ही हैं। १७॥

"समुद्रोऽसि विश्वव्यचाः" हे द्रवणीयस्वरूप ! सब भूतमात्र आप ही में द्रव हैं, क्योंकि कार्य कारण में ही मिले हैं। आप सब के कारण हो तथा सहज से सब जगत् को विस्तृत किया है इससे आप "विश्वव्यचाः" हैं। "अजोऽस्येकपात्" आपका जन्म कभी नहीं होता और यह सब जगत् आपके किञ्चिन्मात्र एक देश में है, आप अनन्त हो। "अहिरसि बुध्न्यः" आपकी हीनता कभी नहीं होती तथा सब जगत् के मूलकारण और अन्तरिक्ष में भी सदा आप ही पूर्ण रहते हो। "वागस्यैन्द्रमहि सदोऽसि" सब शास्त्र के उपदेशक अनन्तविद्यास्वरूप होने से आप वाक् हो, परमैश्वर्यस्वरूप सब विद्वानों में अत्यन्त शोभायमान होने से आप ऐन्द्र हो, सब संसार आप में ठहर रहा है, इससे आप सदा (सभास्वरूप) हो।

"ऋतस्य द्वारौ मा मा सन्ताप्तम्" सत्यविद्या और धर्म ये दोनों मोक्षस्वरूप आप की प्राप्ति के द्वार हैं उनको संतापयुक्त हम लोगों के लिये कभी मत रक्खो किन्तु सुखस्वरूप हो खुले रक्खो जिससे हम लोग सहज से आप को प्राप्त हों।

"अध्वनामित्यादि" हे अध्वपते ! परमार्थ और व्यवहार मार्गों में मुझ को कहीं क्लेश मत होने दे किन्तु उन मार्गों में मुझ को स्वस्ति (आनन्द) ही आप की कृपा से रहे, किसी प्रकार का दुःख न रहे ॥ १८ ॥

पदार्थः—(विभूः) हे व्यापकेश्वर ! सर्वत्र प्रकाशित, वैभवैश्वर्ययुक्त (असि) हो (प्रवाहणः) स्वस्व नियमपूर्वक चलाने वाले तथा सब के निर्वाहकारक (वह्निः) हे स्वप्रकाशक सर्वरसवाहकेश्वर ! (असि) हो (हव्यवाहनः) सब हव्य=उत्कृष्ट रसों के भेदक, आकर्षक तथा यथावत् स्थापक (श्वात्रः) हे आत्मन् ! आप शीघ्र व्यापनशील (असि) हो (प्रचेताः) प्रकृष्ट ज्ञान स्वरूप, प्रकृष्ट ज्ञान के देने वाले

(तुथः) हे सर्ववित् ! (असि) हो (विश्ववेदाः) सब जगत् में विद्यमान प्राप्त और लाभ कराने वाले ॥ १६ ॥

पदार्थः—(उशिक्) हे सर्वप्रिय ! कमनीयस्वरूप (असि) हो (कविः) पूर्ण विद्वान् (अङ्घारिः) स्वभक्तों के अघ=पापके अरिः= नाशक (असि) हो (बम्भारिः) स्वभक्तों और सर्वजगत् के पालन तथा धारण करने वाले (अवस्यूः) अन्नादि पदार्थ अपने भक्त धर्मात्माओं के देने के सदा इच्छुक (असि) हो (दुवस्वान्) परिचरणीय विद्वानों से सेवनीयतम (शुन्ध्यूः) शुद्धस्वरूप और सब जगत् के शोधक (असि) हो (मार्जालीयः) पाप का मार्जन=निवारण करने वाले (सम्राड्) सब राजाओं के महाराज (असि) हो (कृशानुः) दीपों के प्राण के सुखदाता (परिषद्यः) हे न्यायकारिन् परमेश्वर ! सभा के आज्ञापक, सभ्य, सभापति, सभाप्रिय, सभारक्षक, सभा के ही सुख-दायक (असि) हो (पवमानः) हे पवित्र परमेश्वर ! पवित्रस्वरूप पवित्रकारक पवित्रप्रिय (नभः) हे निर्विकार ! आकाशवत् क्षोभरहित अतिसूक्ष्म (असि) हो (प्रतक्वा) सबके ज्ञाता सत्यासत्यकारी जनों के कर्मों की साक्ष्य रखने वाले (मृष्टः) शुद्धस्वरूप सब पापों के मार्जक शोधक (असि) हो (हव्यसूदनः) सब द्रव्यों के विभाग कर्त्ता/मिष्ट, सुगन्ध, रोगनाशक द्रव्यों से पुष्टिकारक द्रव्यों से वायु वृष्टि की शुद्धि कराने वाले (ऋतधामा) हे भगवन् ! आप का ही धाम=स्थान सर्व-गत सत्य और यथार्थस्वरूप (असि) हो (स्वः) सुखस्वरूप और सुख-कारक (ज्योतिः) स्वप्रकाश और सुख के प्रकाशक ॥ १७ ॥

पदार्थः—(समुद्रः) हे द्रवणीय स्वरूप ! सब भूतमात्र आप में ही द्रव हैं क्योंकि आप सबके कारण (असि) हो (विश्वव्यचाः) सहज से सब जगत् को विस्तृत किया है (अजः) अजन्मा (असि) हो (एकपात्) यह सब जगत् आपके किञ्चिन्मात्र एक देश में है (अहिः) हीनतारहित (असि) हो (बुध्न्यः) सब जगत् के मूल कारण और

अन्तरिक्ष में भी सदा परिपूर्ण (वाक्) सब शास्त्र के उपदेशक अनन्त-विद्यास्वरूप (असि) हो (ऐन्द्रम्) परमैश्वर्यस्वरूप सब विद्वानों में अत्यन्त शोभायमान (असि) हो (सदः) सब संसार को अपने में ठहराने वाले, सभास्वरूप (असि) हो (ऋतस्य) सत्य विद्या और धर्म ये दोनों मोक्षस्वरूप आपकी प्राप्ति के (द्वारौ) द्वार हैं (मा-मा) कभी मत (सन्ताप्तम्) सन्तापयुक्त रखो (अध्वनाम्) परमार्थ और व्यवहार मार्गों के (अध्वपते) हे अध्वपते ! (मा) मत (प्र+तिर) मुझको क्लेशयुक्त होने दे (स्वस्ति) आनन्द (मे) मुझ को (अस्मिन्) इस (पथि) व्यवहार मार्ग में (देवयाने) परमार्थ मार्ग में (भूयात्) आपकी कृपा से रहे ॥ १८ ॥

अन्वयः—हे जगदीश्वर ! यस्मात्त्वं यथाऽऽकाशस्तथा विभूरसि, यथा वायुर्महानदो वा तथा प्रवाहणोऽसि, यथा वह्निस्तथा हव्यवाहनोऽसि, यथा प्राणस्तथा प्रचेता श्वात्रोऽसि, यथा सूत्रात्मा पवनस्तथा विश्ववेदास्तुथश्चासि, तस्मात् सत्कर्त्तव्योऽसीति वयं विजानीमः ॥ १६ ॥

अन्वयः—हे भगवन् ! यतस्त्वम् उशिगसि, अंघारिः कविरसि बम्भारिरवस्यूरसि दुवस्वान् शुन्ध्यूर्मार्जालीयोऽसि पवमानः परिषद्योऽसि यथा प्रतक्त्रा तथान्तरिक्षप्रकाशका नमोऽसि यथा हव्यसूदनस्तथा मृष्टोऽसि यथा स्वर्ज्योतिर्ऋतधामाऽसि तथा सत्यस्थायी वर्त्तसे तथैव तत्तद्गुणेन प्रसिद्धो भवान् सर्वैरुपासनीयोऽस्तीति विजानीमः ॥ १७ ॥

अन्वयः—यथेश्वरः समुद्रो विश्वव्यचा अस्ति स एकपादजोऽस्ति अहिर्बुध्न्योऽसि । हे अध्वपते ! यथैन्द्रसदोऽस्ति यथा स ऋतस्य द्वारौ सन्तापयति तथा मा सन्तापयेः । यथा चास्मिन् देवयाने पथि स्वस्ति भूयात्तथा त्वं सततं प्रयतस्व ॥ १८ ॥ ●

मूल स्तुति

देव कृतस्यैनसोऽवयजनमसि । मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजन-
मसि । पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमसि । आत्मकृतस्यैनसोऽवयजन-
मसि । एनस एनसोऽवयजनमसि । यच्चाहमेनो विद्वांश्चकार ।
यच्चाविद्वांस्तस्य सर्वस्यैनसोऽवयजनमसि ॥ १९ ॥

यजु० ८ । १३ ॥

व्याख्यान—हे सर्वपापप्रणाशक । "देवकृत:०" इन्द्रिय विद्वान् और दिव्यगुणयुक्त जन के दुःख के नाशक एक ही आप हो अन्य कोई नहीं, एवं मनुष्य (मध्यस्थजन), पितृ (परमविद्यायुक्तजन) और "आत्मकृत०" जीव के पापों तथा "एनस०" पापों से भी बड़े पापों से आप ही अवयजन हो अर्थात् सर्व पापों से अलग हो और हम सब मनुष्यों को भी पाप से दूर रखने वाले एक आप ही दयामय पिता हो।

हे महानन्तविद्य ! जो-जो मैंने विद्वान् वा अविद्वान् हो के पाप किया हो उन सब पापों का छुड़ानेवाला आप के विना कोई भी इस संसार में हमारा शरण नहीं है। इससे हमारे अविद्यादि सब पाप छुड़ा के शीघ्र हम को शुद्ध करो ॥ १९ ॥

पदार्थः—(देवकृतस्य) हे सर्वपापप्रणाशक ! इन्द्रिय विद्वान् और दिव्यगुणयुक्त जन के (एनसः) दुःख के (अवयजनम्) नाशक (असि) हो (मनुष्यकृतस्य) मनुष्य=मध्यस्थ जन के (एनसः) पाप से (अवयजनम्) अलग/दूर करने वाले (असि) हो (पितृकृतस्य) पितृ= परमविद्यायुक्त जन के (एनसः) पाप से (अवयजनम्) अलग/दूर करने वाले (असि) हो (आत्मकृतस्य) जीव के (एनसः) पापों से

(अवयजनम्) अलग/दूर करने वाले (असि) हो (एनसः) पापों से भी (एनसः) बड़े पापों से (अवयजनम्) अलग (असि) हो (यत्) जो (च) और (अहम्) मैंने (विद्वान्) विद्वान् होकर (चकार) पाप किया है (यत्) जो (अविद्वान्) अविद्वान् होकर (तस्य) उन का (सर्वस्य) सब का (एनसः) पापों को (अवयजनम्) छुड़ाने वाले (असि) हो ॥

अन्वयः—हे सर्वपापप्रणाशक ! त्वं देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि, मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि, पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमसि, आत्मकृतस्यैनसोऽवयजनमसि । एनस एनसोऽवयजनमसि । हे महानन्तविद्य ! विद्वानहं यच्चैनः पापं चकार कृतवान्, करोमि, करिष्यामि, अविद्वानहं यच्चैनः कृतवान्, करोमि, करिष्यामि वा तस्य सर्वस्यैनसोऽवयजनं चासि ॥

मूल स्तुति

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२०॥
यजु० १३ । ४ ॥

व्याख्यान—जब सृष्टि नहीं हुई थी तब एक=अद्वितीय हिरण्यगर्भ (जो सूर्य्यादि तेजस्वी पदार्थों का गर्भ नाम उत्पत्तिस्थान उत्पादक) है, सो ही प्रथम था। वह सब जगत् का सनातन प्रादुर्भूत प्रसिद्ध पति है। वही परमात्मा पृथिवी से ले के प्रकृतिपर्यन्त जगत् को रच के धारण करता है। "कस्मै" (कः प्रजापतिः, प्रजापतिर्वै कस्तस्मै देवाय, शतपथे) प्रजापति जो परमात्मा उस की पूजा आत्मादि पदार्थों के समर्पण से यथावत् करें, उससे भिन्न की उपासना लेशमात्र भी हम लोग न करें। जो परमात्मा को छोड़ के वा उसके स्थान में दूसरे की पूजा करता है उस की और उस देश भर की अत्यन्त दुर्दशा होती है, यह प्रसिद्ध है।

इससे चेतो मनुष्यो ! जो तुम को सुख की इच्छा हो तो एक निराकार परमात्मा की यथावत् भक्ति करो; अन्यथा तुम को कभी सुख न होगा ॥ २० ॥

पदार्थः—(हिरण्यगर्भः) सूर्यादि तेजस्वी पदार्थों का गर्भ नाम उत्पत्तिस्थान उत्पादक (समबर्तत) था (अग्रे) जब सृष्टि नहीं हुई थी तब/प्रथम (भूतस्य) सब जगत् का (जातः) सनातन, प्रादुर्भूत, प्रसिद्ध (पतिः) स्वामी (एकः) एक (आसीत्) है (सः) वही परमात्मा (दाधार) रचके धारण करता है (पृथिवीम्) पृथिवी से ले के प्रकृति पर्यन्त जगत् को (द्याम्) द्युलोक को (उत) और (इमाम्) इस क

(कस्मै) प्रजापति की (देवाय) जो परमात्मा उसकी (हविषा) आत्मादि पदार्थों के समर्पण से (विधेम) पूजा यथावत् करें ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा वयं योऽस्य भूतस्य जातः पतिरेको हिरण्यगर्भोऽग्रे समवर्त्ततासीत् स इमां सृष्टिं रचयित्वोतापि पृथिवीं द्यां दाधार तस्मै कस्मै सुखस्वरूपाय देवाय परमेश्वराय हविषा विधेम तथा यूयमप्येनं सेवध्वम् ॥

मूल प्रार्थना

इन्द्रोविश्वस्य राजति । शं नोऽअस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ २१ ॥ यजु० ३६ । मं० ८ ॥

शं नो वातः पवताꣳशं नस्तपतु सूर्यः । शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्योऽअभिवर्षतु ॥ २२ ॥ यजु० ३६ । मं० १० ॥

अहानि शं भवन्तु नः शꣳ रात्रीः प्रतिधीयताम् । शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या । शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः ॥ २३ ॥ यजु० ३६ । मं० ११ ॥

व्याख्यान—हे इन्द्र ! आप परमैश्वर्ययुक्त सब संसार के राजा हो, सर्वप्रकाशक हो । हे रक्षक ! आप कृपा से हम लोगों के "द्विपदे" जो पुत्रादि, उन के लिए परमसुखदायक हो, तथा "चतुष्पदे" हस्ती, अश्व और गवादि पशुओं के लिये भी परम सुखकारक हो, जिससे हम लोगों को सदा आनन्द ही रहे ॥ २१ ॥

हे सर्वनियन्तः ! हमारे लिये सुखकारक शीतल मन्द और सुगन्ध सदैव वायु चले । ऐसे सूर्य भी सुखकारक तपे तथा मेघ भी सुख का शब्द लिये अर्थात् गर्जन पूर्वक सदैव काल काल में सुखकारक वर्षा वर्षे । जिससे आप के कृपापात्र हम लोग सुखानन्द ही में सदा रहें ॥ २२ ॥

हे क्षणादि कालपते ! सब दिवस आप के नियम से सुखरूप ही हमको हों, हमारे लिये सर्व रात्रि भी आनन्द से बीतें । हे भगवन् ! दिन और रात्रियों को सुखकारक ही आप स्थापन करो जिससे सब समय में हम लोग सुखी ही रहें ।

हे सर्वस्वामिन् ! "इन्द्राग्नी" सूर्य तथा अग्नि ये दोनों हमको आप के अनुग्रह से और नानाविधि रक्षाओं से सुखकारक हों।

"इन्द्रावरुणा रातहव्या" हे प्राणाधार ! होम से शुद्धिगुणयुक्त हुए आपकी प्रेरणा से वायु और चन्द्र हम लोगों के लिये सुखरूप ही सदा हों।

"इन्द्रापूषणा, वाजसातौ" हे प्राणपते ! आप की रक्षा से पूर्ण आयु और बलयुक्त प्राण वाले हम लोग अपने अत्यन्त पुरुषार्थयुक्त युद्ध में स्थिर रहें, जिससे शत्रुओं के सम्मुख हम निर्बल कभी न हों।

"इन्द्रासोमा सुविताय शंयोः" (प्राणापानौ वा इन्द्राग्नी इत्यादि शतपथे) हे महाराज ! आप के प्रबन्ध से राजा और प्रजा परस्पर विद्यादि सत्यगुणयुक्त होके अपने ऐश्वर्य का उत्पादन करें, तथा आप की कृपा से परस्पर प्रीतियुक्त हों, अत्यन्त सुख लाभों को प्राप्त हों।

आप हम पुत्र लोगों को सुखी देख के अत्यन्त प्रसन्न हों और हम भी प्रसन्नता से आप और जो आपकी सत्य आज्ञा उस में ही तत्पर हों ॥ २३ ॥

पदार्थः—(इन्द्रः) हे इन्द्र आप परमैश्वर्ययुक्त/हे रक्षक/हे सर्वनियन्तः ! हे क्षणादिकालपते ! हे सर्वस्वामिन् ! हे प्राणाधार ! हे प्राणपते ! हे महाराज ! (विश्वस्य) सब संसार के (राजति) राजा हो, सर्वप्रकाशक हो (शम्) परमसुखदायक (नः) हम लोगों के (अस्तु) हो (द्विपदे) पुत्रादि के लिये (शम्) परमसुखदायक (चतुष्पदे) हस्ती अश्व और गवादि पशुओं के लिये ॥ २१ ॥

पदार्थः—(शम्) सुखकारक शीतल मन्द और सुगन्ध (नः) हमारे लिये (वातः) वायु (पवताम्) चले (शम्) सुखकारक (नः)

हमारे लिये (तपतु) तपे (सूर्यः) सूर्य (शम्) सुखकारक (नः) हमारे लिये (कनिक्रदद्) गर्जनपूर्वक (देवः) (पर्जन्यः) मेघ (अभिवर्षतु) वर्षे ॥ २२ ॥

पदार्थः—(अहानि) सब दिवस (शम्) सुखरूप (भवन्तु) हों (नः) हम को (शम्) आनन्द से/सुखरूप (रात्रीः) सर्व रात्रि/रात्रियों का (प्रतिधीयताम्) बीतें/स्थापन करो (शम्) सुखकारक (नः) हमको (इन्द्राग्नी) सूर्य तथा अग्नि (भवताम्) हों (अवोभिः) नानाविध रक्षाओं से (शम्) सुखरूप (नः) हम लोगों के लिये (इन्द्रावरुणा) वायु और चन्द्र (रातहव्या) होम से शुद्धिगुण युक्त हुये (शम्) स्थिर (नः) हम लोग (इन्द्रापूषणा) पूर्ण आयु और बलयुक्त प्राण वाले (वाजसातौ) पुरुषार्थयुक्त युद्ध में (शम्) परस्पर विद्यादि सत्य गुण युक्त हो के (इन्द्रासोमा) राजा और प्रजा (सुविताय) उत्पादन करें (शंयोः) अपने ऐश्वर्य का ॥ २३ ॥

अन्वयः—हे जगदीश्वर ! यो भवानिन्द्र इव विश्वस्य राजति तस्य भवतः कृपया नो द्विपदे शमस्तु नश्चतुष्पदे शमस्तु ॥

अन्वयः—हे परमेश्वर विद्वन् वा ! यथा वातो नः शं पवतां सूर्यो नस्तपतु कनिक्रदद्देवो नः शं भवन्तु पर्जन्यो नोऽभिवर्षतु तथाऽस्मान् शिक्षय ॥

अन्वयः—हे परमेश्वर विद्वन् वा ! यथाऽवोभिः सह शंयोः सुविताय नोऽहानि शं भवन्तु रात्रीश्शं प्रतिधीयतामिन्द्राग्नी नः शं भवतां रातहव्या इन्द्रावरुणा नः शं भवतां वाजसाताविन्द्रापूषणा नः शं भवताम् इन्द्रासोमा च शं भवतां तथाऽस्माननुशिक्षेताम् ॥

मूल स्तुति

प्र तद्वोचेदमृतं नु विद्वान् गन्धर्वो धाम विभृतं गुहा सत् । त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुः पिताऽसत् ॥ २४ ॥ यजु० ३२ । ९ ॥

व्याख्यान—हे वेदादिशास्त्र और विद्वानों के प्रतिपादन करने योग्य ! जो अमृत (मरणादि दोषरहित), मुक्तों का धाम (निवासस्थान), सर्वगत, सब का धारण और पोषण करनेवाला, सब की बुद्धियों का साक्षी ब्रह्म है उस आप का उपदेश तथा धारण जो विद्वान् जानता है वह गन्धर्व कहाता है (गच्छतीति गं ब्रह्म तद्धरतीति स गन्धर्वः) सर्वगत ब्रह्म को जो धारण करनेवाला उसका नाम गन्धर्व है । तथा परमात्मा के तीन पद हैं—जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करने के सामर्थ्य, तथा ईश्वर को जो स्वहृदय में जानता है वह पिता का भी पिता है अर्थात् विद्वानों में भी विद्वान् है ॥ २४ ॥

पदार्थः—(तद्) उस आपका (प्र+वोचेत्) उपदेश तथा धारण करना जानता है (अमृतम्) अमृत=मरणादि दोष रहित (नु) [निश्चय से] (विद्वान्) विद्वान् (गन्धर्वः) सर्वगत ब्रह्म को धारण करने वाला (धाम) मुक्तों का धाम=निवासस्थान, सर्वगत (विभृतम्) सबका धारण और पोषण करने वाला (गुहा) सबकी बुद्धि का साक्षी (सत्) ब्रह्म है (त्रीणि) तीन (पदानि) पद हैं/जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय करने के सामर्थ्य (निहिता) [विद्यमान] (गुहा) स्वहृदय में (अस्य) परमात्मा के (यः) जो (तानि) इनको=उत्पत्ति स्थिति प्रलय तथा ईश्वर को (वेद) जानता है (सः) वह (पितुः) पिता का भी/विद्वानों में भी (पिता) पिता/विद्वान् ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यो गन्धर्वो विद्वान् गुहा विभृतममृतं धाम तत् सन्न प्रवोचेत् यान्यस्य गुहा निहितानि पदानि त्रीणि सन्ति तानि च वेद स पितुः पिताऽसत् ॥

मूल प्रार्थना

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳशान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिस्सर्वꣳ शान्तिश्शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥२५॥

यजु० ३६। १७॥

व्याख्यान—हे सर्वदुःख की शान्ति करनेवाले ! सब लोकों से ऊपर जो आकाश सो सर्वदा हम लोगों के लिये शान्त (निरुपद्रव) सुखकारक ही रहे। अन्तरिक्ष=मध्यस्थ लोक और उसमें स्थित वायु आदि पदार्थ; पृथिवी, पृथिवीस्थ पदार्थ; जल, जलस्थ पदार्थ; ओषधि, तत्रस्थ गुण; वनस्पति, तत्रस्थ पदार्थ; विश्वेदेव (जगत् के सब विद्वान्) तथा विश्वद्योतक वेदमन्त्र, इन्द्रिय, सूर्यादि, उनकी किरण, तत्रस्थ गुण; ब्रह्म=परमात्मा तथा वेदशास्त्र, स्थूल और सूक्ष्म, चराऽचर जगत् ये सब पदार्थ हमारे लिये हे सर्वशक्तिमन् परमात्मन् ! आप की कृपा से शान्त (निरुपद्रव) सदानुकूल सुखदायक हों। मुझ को भी शान्ति प्राप्त हो जिससे मैं भी आप की कृपा से शान्त=दुष्ट क्रोधादि उपद्रव रहित होऊँ, तथा सब संसारस्थ जीव भी दुष्ट क्रोधादि उपद्रव रहित हों॥ २५॥

पदार्थः—(द्यौः) सब लोकों से ऊपर आकाश सो (शान्तिः) शान्त=निरुपद्रव सुखकारक ही रहे (अन्तरिक्षम्) मध्यस्थ लोक और उसमें वायु आदि पदार्थ (शान्तिः) पूर्ववत् (पृथिवी) पृथिवी, पृथिवीस्थ पदार्थ (शान्तिः) पूर्ववत् (आपः) जल, जलस्थ पदार्थ (शान्तिः) पूर्ववत् (ओषधयः) ओषधि तत्रस्थ गुण (शान्तिः) पूर्ववत् (वनस्पतयः) वनस्पति तत्रस्थ पदार्थ (शान्तिः) पूर्ववत् (विश्वेदेवाः) जगत् के सब विद्वान्, तथा द्योतक वेदमन्त्र, इन्द्रिय, सूर्यादि उनकी किरण तत्रस्थ गुण (शान्तिः) पूर्ववत् (ब्रह्म) परमात्मा तथा वेदशास्त्र (शान्तिः) पूर्ववत् (सर्वम्) स्थूल और सूक्ष्म चराचर जगत् ये सब पदार्थ (शान्तिः) पूर्ववत् (शान्तिः) सब संसारस्थ जीव (एव) भी (शान्तिः) दुष्ट क्रोधादि उपद्रव रहित हों (सा) वह (मा) मुझ को भी (शान्तिः) शान्ति (एधि) प्राप्त हो ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! या द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिर्मेधि सा शान्तिर्युष्माकमपि प्राप्नोतु ॥

मूल स्तुति

नमः॑ शम्भ॒वाय॑ च मयोभ॒वाय॑ च॒ नमः॑ शंक॒राय॑ च मयस्क॒राय॑ च । नमः॑ शि॒वाय॑ च शि॒वत॑राय च ॥ २६ ॥

यज० १६ । ४१ ॥

व्याख्यान—हे कल्याणस्वरूप, कल्याणकर ! आप शंभव हो (मोक्ष सुखस्वरूप और मोक्ष सुख के करनेवाले हो), आपको नमस्कार है। आप मयोभव हो, सांसारिक सुख के करनेवाले आप को मैं नमस्कार करता हूँ, आप शंकर हो, आप से ही जीवों का कल्याण होता है, अन्य से नहीं, तथा मयस्कर अर्थात् मन, इन्द्रिय, प्राण और आत्मा को सुख करनेवाले आप ही हो। आप शिव (मङ्गलमय) हो तथा आप शिवतर (अत्यन्त कल्याणस्वरूप और कल्याणकारक) हो इससे आप को हम लोग बारम्बार नमस्कार करते हैं।

(नमो नम इति यज्ञः शतपथे) श्रद्धा भक्ति से जो जन ईश्वर को नमस्कारादि करता है सो मङ्गलमय ही होता है ॥ २६ ॥

पदार्थः—(नमः) नमस्कार है। मैं नमस्कार करता हूँ (शंभवाय) कल्याणस्वरूप, कल्याणकर, मोक्षसुखस्वरूप और मोक्षसुख के करने वाले को (च) और (मयोभवाय) सांसारिक सुख के करने वाले को (च) और (नमः) पूर्ववत् (शंकराय) जीवों के कल्याण करने वाले को (च) और (मयस्कराय) मन, इन्द्रिय, प्राण और आत्मा को सुख करने वाले को (च) और (नमः) पूर्ववत् (शिवाय) मङ्गलमय को (च) और (शिवतराय) अत्यन्तकल्याणस्वरूप और कल्याणकारक को ॥

अन्वयः—ये मनुष्याः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च नमः कुर्वन्ति ते कल्याणमाप्नुवन्ति ॥

मूल प्रार्थना

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ २७ ॥
यजु० २५ । २१ ॥

व्याख्यान—हे देवेश्वर ! देव विद्वानो ! हम लोग कानों से सदैव भद्र कल्याण को ही सुनें, अकल्याण की बात भी हम कभी न सुनें । हे यजनीयेश्वर ! हे यज्ञकर्त्तारो ! हम आँखों से कल्याण (मंगलसुख) को ही सदा देखें ।

हे जनो ! हे जगदीश्वर ! हमारे सब अङ्ग उपाङ्ग (श्रोत्रादि इन्द्रिय तथा सेनादि उपांग) स्थिर (दृढ़) सदा रहें, जिनसे हम लोग स्थिरता से आप की स्तुति और आपकी आज्ञा का अनुष्ठान सदा करें, तथा हम लोग आत्मा, शरीर, इन्द्रिय और विद्वानों के हितकारक आयु को विविध सुखपूर्वक प्राप्त हों अर्थात् सदा सुख में ही रहें ॥ २७ ॥

पदार्थः—(भद्रम्) कल्याण को ही (कर्णेभिः) कानों से (शृणुयाम) हम लोग सुनें (देवाः) हे देवेश्वर !/देव विद्वानो ! (भद्रम्) कल्याण=मङ्गलसुख को ही (पश्येम) हम सदा देखें । (अक्षभिः) आँखों से (यजत्राः) हे यजनीयेश्वर ! हे यज्ञकर्त्तारो ! (स्थिरैः) दृढ़ (अङ्गैः) अङ्ग, उपाङ्ग=श्रोत्रादि इन्द्रिय तथा सेनादि उपाङ्ग से (तुष्टुवांसः) आपकी स्तुति और आपकी आज्ञा का अनुष्ठान सदा करें (तनूभिः) आत्मा शरीर सहित (व्यशेमहि) विवध सुखपूर्वक प्राप्त हों (देवहितम्) इन्द्रिय और विद्वानों के हितकारक (यद्) [जो] (आयुः) आयु को ॥

अन्वयः—हे देवेश्वर ! यजत्रा देवा विद्वांसो वा ! भवत्सङ्गेन वयं कर्णेभिर्भद्रं शृणुयामाक्षभिर्भद्रं पश्येम स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसः सन्तस्तनूभिर्यद्देवहितमायुस्तद् व्यशेमहि ॥

मूल स्तुति

ब्रह्म॑ जज्ञा॒नं प्र॑थ॒मं पु॒रस्ता॒द्वि सी॑म॒तः सु॒रुचो॑ वे॒नऽआ॑वः । स बु॒ध्न्या॒ऽ३उप॒मा अ॑स्य वि॒ष्ठाः स॒तश्च॒ योनि॒मस॑तश्च॒ विवः॑ ॥ २८ ॥ यजु० १३ । ३ ॥

व्याख्यान—हे महीय परमेश्वर ! आप बड़ों से भी बड़े हो, आप से बड़ा वा आप के तुल्य कोई नहीं है। "जज्ञानम्" सब जगत् में व्यापक (प्रादुर्भूत) हो सब जगत् के प्रथम (आदिकारण) आप ही हो। सूर्यादि लोक "सीमतः" सीमा से युक्त (मर्यादासहित) "सुरुचः" आप से प्रकाशित हैं। "पुरस्तात्" इन को पूर्व रच के आप ही धारण कर रहे हो। (व्यावः) इन सब लोकों को विविध नियमों से पृथक्-पृथक् यथायोग्य वर्त्ता रहे हो। "वेनः" आप के आनन्दस्वरूप होने से ऐसा कोई जन संसार में नहीं है जो आप की कामना न करे। किन्तु सब ही आप को मिला चाहते हैं। तथा आप अनन्त विद्यायुक्त हो, सब रीति से रक्षक आप ही हो। सो ही परमात्मा "बुध्न्याः" अन्तरिक्षान्तर्गत दिशादि पदार्थों को "विवः" विवृत (विभक्त) करता है, वे अन्तरिक्षादि उपमा सब व्यवहारों में उपयुक्त होते हैं और वे इस विवध जगत् के निवासस्थान हैं।

सत्=विद्यमान स्थूल जगत्, असत्=अविद्या चक्षुरादि इन्द्रियों से अगोचर, इस विवध जगत् की योनि=आदि कारण आप को ही वेद शास्त्र और विद्वान् लोग कहते हैं। इससे इस जगत् के माता पिता आप ही हैं; हम लोगों के भजनीय इष्टदेव हैं ॥ २८ ॥

पदार्थः—(ब्रह्म) हे महीय परमेश्वर ! आप बड़ों से भी बड़े हो। आपसे बड़ा वा आपके तुल्य कोई नहीं है (जज्ञानम्) सब जगत् में व्यापक=प्रादुर्भूत हो (प्रथमम्) सब जगत् के आदिकारण आप ही हो (पुरस्तात्) पूर्व (सीमतः) विवध सीमा से युक्त=मर्यादा सहित (सुरुचः) सूर्यादि लोक आपसे ही प्रकाशित हैं (वेनः) आनन्द-स्वरूप, कामना करने योग्य, प्राप्त करने योग्य, अनन्तविद्यायुक्त (वि-आवः) सब लोकों को विवध नियमों से प्रथक्-पृथक् यथायोग्य वर्त्ता रहे हो (सः) सो ही आप (बुध्न्याः) अन्तरिक्षान्तर्गत दिशादि पदार्थों को (उपमाः) वे अन्तरिक्षादि उपमा=सब व्यवहारों में उप-युक्त होते हैं (अस्य) इस जगत् के (विष्ठाः) निवास स्थान हैं (सतः) विद्यमान स्थूल जगत् की (च) तथा (योनिम्) आदिकारण आपको (असतः) अविद्या चक्षुरादि इन्द्रियों से अगोचर इस विविध जगत् की (विवः) विवृत=विभक्त करता है ॥

अन्वयः—यज्जज्ञानं प्रथमं ब्रह्म यः सुरुचो वेनो यस्यास्य बुध्न्या विष्ठा उपमाः सन्ति स सर्वभाक् स विसीमतः सतश्चासतश्च योनिं विवस्तत् सर्वैरुपासनीयम् ॥

मूल प्रार्थना

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः ॥ २९ ॥

यजु० ६ । २२ । ३६ । मं० २३ ॥

व्याख्यान—हे सर्वमित्रसम्पादक ! आप की कृपा से प्राण और जल तथा विद्या और ओषधी "सुमित्रिया" (सुखदायक) हम लोगों के लिये सदा हो; कभी प्रतिकूल न हों। और जो हम से द्वेष= अप्रीति शत्रुता करता है तथा जिस दुष्ट से हम द्वेष करते हैं, हे न्याय-कारिन् ! उसके लिये "दुर्मित्रिया" पूर्वोक्त प्राणादि प्रतिकूल दुःख-कारक ही हो, अर्थात् जो अधर्म करे उस को आप के रचे जगत् के पदार्थ दुःखदायक ही हों जिससे वह अधर्म न करे और हम को दुःख न दे सके। हम लोग सदा सुखी ही रहें ॥ २९ ॥

पदार्थः—(सुमित्रियाः) सुखदायक (नः) हम लोगों के लिये (आपः) प्राण, जल तथा विद्या (ओषधयः) ओषधि (सन्तु) सदा हो (दुर्मित्रियाः) प्रतिकूल=दुःखकारक (तस्मै) उसके लिये (सन्तु) हों (यः) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) द्वेष, अप्रीति, शत्रुता करता है (यम्) जिस दुष्ट से (च) तथा (वयम्) हम (द्विष्मः) द्वेष करते हैं ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! या इमा आप ओषधयो नः सुमित्रियाः सन्तु ता योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तस्मै दुर्मित्रियाः सन्तु ॥

मूल प्रार्थना

य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत् पिता नः।
स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ२ऽआविवेश ॥३०॥
यजु० १७। १७॥

व्याख्यान—"होता" उत्पत्ति समय में देने और प्रलय समय में सबको लेनेवाला परमात्मा ही है। "ऋषिः" सर्वज्ञ इन सब लोक लोकान्तर भुवनों का अपने सामर्थ्य कारण में होम (प्रलय करके) "न्यसीदत्" नित्य अवस्थित है। सो ही हमारा पिता है। फिर जब द्रविण द्रव्यरूप जगत् को स्वेच्छा से उत्पन्न किया चाहता है उस "आशिषा" सामर्थ्य से यथायोग्य विविध जगत् को सहज-स्वभाव से रच देता है। इस चराचर "प्रथमच्छत्" विस्तीर्ण जगत् को रच के अनन्तस्वरूप से आच्छादित करता है और अन्तर्यामी, साक्षी-स्वरूप उसमें प्रविष्ट हो रहा है अर्थात् बाहर और भीतर परिपूर्ण हो रहा है वही हमारा निश्चित पिता है।

उसकी सेवा छोड़ के जो मनुष्य अन्य मूर्त्यादि की सेवा करता है वह कृतघ्नत्वादि महादोषयुक्त हो के सदैव दुःखभागी होता है। और जो मनुष्य परमदयामय पिता की आज्ञा में रहता है, वह सर्वानन्द का सदैव भोग करता है॥ ३०॥

पदार्थः—(यः) [जो] (इमाः) इन (विश्वा) सब (भुवनानि) लोक लोकान्तरों को (जुह्वत्) अपने सामर्थ्य कारण में होम करके (ऋषिः) सर्वज्ञ (होता) उत्पत्ति समय में देने और प्रलय समय में सबको लेने वाला परमात्मा (न्यसीदत्) नित्य अवस्थित है (पिता) पिता है (नः) हमारा (सः) सो ही (आशिषा) सामर्थ्य से। सहज-

स्वभाव से (द्रविणम्) द्रव्य रूप जगत् को (इच्छमानः) स्वेच्छा से उत्पन्न किया चाहता है (प्रथमच्छत्) विस्तीर्ण जगत् को रच के अनन्त स्वरूप से आच्छादित करता है (अवरान्) बाहर और भीतर (आविवेश) अन्तर्यामी साक्षी स्वरूप से प्रविष्ट हो रहा है/परिपूर्ण हो रहा है ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! य ऋषिर्होता नः पिता परमेश्वर इमा विश्वा भुवनानि न्यसीदत् सर्वांल्लोकान् जुह्वत् स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवरानाविवेशेति यूयं विजानीत ॥

मूल स्तुति

इ॒षे पि॑न्वस्व । ऊ॒र्जे पि॑न्वस्व । ब्रह्म॑णे पिन्वस्व । क्ष॒त्राय॑ पिन्वस्व । द्यावा॑पृथि॒वीभ्यां॑ पिन्वस्व । धर्मा॑सि सु॒धर्मं॑ । अमे॑न्य॒स्मे नृ॒म्णानि॑ धारय॒ ब्रह्म॑ धारय क्ष॒त्रं धा॑रय॒ विशं॑ धारय ॥ ३१ ॥
यजु० ३८ । १४ ॥

व्याख्यान—हे सर्वसौख्यप्रदेश्वर ! हमको "इषे" उत्तमान्न के लिये पुष्ट कर, अन्न के अपचन वा कुपच के रोगों से बचा तथा विना अन्न के दुःखी हम लोग कभी न हों । हे महाबल ! "ऊर्जे" अत्यन्त पराक्रम के लिये हमको पुष्ट कर । हे वेदोत्पादक ! "ब्रह्मणे" सत्य वेदविद्या के लिये बुद्ध्यादि बल से सदैव हमको पुष्ट और बलयुक्त कर । हे महाराजाधिराज परब्रह्मन् ! "क्षत्राय" अखण्ड चक्रवर्त्ती राज्य के लिये शौर्य, धैर्य, नीति, विनय, पराक्रम और बलादि उत्तम गुणयुक्त कृपा से हम लोगों को यथावत् पुष्ट कर । अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी न हों तथा हम लोग पराधीन कभी न हों । हे स्वर्गपृथिवीश ! "द्यावापृथिवीभ्याम्" स्वर्ग (परमोत्कृष्ट मोक्षसुख) पृथिवी (संसारसुख) इन दोनों के लिये हमको समर्थ कर ।

हे सुष्ठु धर्मशील ! तू धर्मकारी हो तथा धैर्यस्वरूप ही है, हम लोगों को भी कृपा से धर्मात्मा कर । "अमेनि" तू निर्वैर है हम को भी निर्वैर कर, तथा कृपादृष्टि से "अस्मे" (अस्मभ्यम्) हमारे लिये "नृम्णानि" विद्या, पुरुषार्थ, हस्ती, अश्व, सुवर्ण, हीरादि रत्न, उत्कृष्ट राज्य, उत्तम पुरुष और प्रीत्यादि पदार्थों को धारण कर । जिससे हम लोग किसी पदार्थ के विना दुःखी न हों ।

हे सर्वाधिपते ! ब्राह्मण (पूर्णविद्यादि सद्गुणयुक्त), क्षत्र (बुद्धि

विद्या तथा शौर्यादि गुणयुक्त), "विश" अनेक विद्योद्यम, बुद्धि, विद्या, धन और धान्यादि बलयुक्त तथा शूद्रादि भी सेवादि गुणयुक्त उत्तम हमारे राज्य में हों। इन सबका धारण आप ही करो जिससे अखण्ड ऐश्वर्य हमारा आप की कृपा से सदा बना रहे ॥ ३१ ॥

पदार्थः—(इषे) उत्तम अन्न के लिये (पिन्वस्व) पुष्टकर (ऊर्जे) अत्यन्त पराक्रम के लिये (पिन्वस्व) पुष्ट कर (ब्रह्मणे) सत्य वेद विद्या के लिये (पिन्वस्व) सदैव हमको पुष्ट और बलयुक्त कर (क्षत्राय) अखण्ड चक्रवर्ती राज्य के लिये (पिन्वस्व) शौर्य, धैर्य, नीति, विनय, पराक्रम और बलादि उत्तम गुण युक्त कृपा से हम लोगों को यथावत् पुष्ट कर (द्यावापृथिवीभ्याम्) स्वर्ग=सर्वोत्कृष्ट मोक्षसुख, पृथिवी=संसारसुख इन दोनों के लिये (पिन्वस्व) हम लोगों को समर्थ कर (धर्म) धर्मात्मा तथा धैर्यस्वरूप (असि) तुम हो (सुधर्म) हे सुष्ठु धर्मशील (अमेनि) निर्वैर (अस्मे) हमारे लिये (नृम्णानि) विद्या, पुरुषार्थ, हस्ती, अश्व, सुवर्ण, हीरादि रत्न उत्कृष्ट राज्य उत्तम पुरुष और प्रीति-आदि पदार्थों को (धारय) धारण कर (ब्रह्म) ब्राह्मण=पूर्णविद्यादिसद्गुणयुक्त का (धारय) धारण आप ही करो (क्षत्रम्) क्षत्र=बुद्धि, विद्या तथा शौर्यादि गुणयुक्त का (धारय) धारण आप ही करो (विशम्) अनेक विध उद्यम, बुद्धि, विद्या, धन, धान्य आदि बलयुक्त तथा शूद्रादि भी सेवादिगुणयुक्त का (धारय) धारण आप ही करो ॥

अन्वयः—हे धर्म सुधर्म पुरुष स्त्रि वा ! त्वम् अमेन्यसि येनाऽस्मे नृम्णानि धारय ब्रह्म धारय क्षत्रं धारय विशं धारय। तेनेषे पिन्वस्वोर्जे पिन्वस्व ब्रह्मणे पिन्वस्व क्षत्राय पिन्वस्व द्यावापृथिवीभ्यां पिन्वस्व ॥

मूल स्तुति

किꣳस्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित्कथासीत्। यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा विद्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥ ३२ ॥ यजु० १७। १८ ॥

व्याख्यान—(प्रश्नोत्तर विद्या से) इस संसार का अधिष्ठान क्या है? कारण और उत्पादक कौन है? किस प्रकार से है? तथा रचना करने वाला अधिष्ठान क्या है? तथा निमित्तकारण और साधन जगत् वा ईश्वर के क्या हैं?

(उत्तर)—"यतः" जिसका विश्व (जगत् कर्म) किया हुआ है, उस विश्वकर्मा परमात्मा ने अनन्त सामर्थ्य से इस जगत् को रचा है। वही इस सब जगत् का अधिष्ठान, निमित्त और साधनादि है। उसने अपने अनन्त सामर्थ्य से इस सब जगत् को यथायोग्य रचा, और भूमि से लेके स्वर्ग पर्यन्त रच के अपनी महिमा से "और्णोत्" आच्छादित कर रक्खा है। और परमात्मा का अधिष्ठानादि परमात्मा ही है; अन्य कोई नहीं। सब का भी उत्पादन, रक्षण, धारणादि वही करता है, तथा आनन्दमय है, और वह ईश्वर "विश्वचक्षाः" सब संसार का द्रष्टा है। उस को छोड़ के अन्य का आश्रय जो करता है वह दुःखसागर में क्यों न डूबेगा? ॥ ३२ ॥

पदार्थः—(किंस्वित्) क्या (आसीत्) है (अधिष्ठानम्) इस संसार का अधिष्ठान/रचना करने वाला अधिष्ठान (आरम्भणम्) कारण उत्पादक/निमित्त कारण और साधन जगत् वा ईश्वर के (कतमत्स्वित्) कौन/क्या हैं (कथा) किस प्रकार से (आसीत्) है (यतः) जिसका (भूमिम्) भूमि से लेके स्वर्ग पर्यन्त (जनयन्) रच

के (विश्वकर्मा) विश्वकर्मा परमात्मा ने अनन्त सामर्थ्य से इस जगत् को रचा है (विद्याम्) [हम उसको जानें] (और्णोत्) आच्छादित कर रखा है (महिना) अपनी महिमा से (विश्वचक्षाः) ईश्वर सब संसार का द्रष्टा है ॥

अन्वयः—हे विद्वन्नस्य जगतोऽधिष्ठानं किं स्विदासीत्। आरम्भणं कतमत् कथा स्विदासीत्। यतो विश्वकर्मा विश्वचक्षा जगदीश्वरो भूमिं द्यां च जनयत् महिना व्यौर्णोत् ॥

मूल प्रार्थना

तनूपा ऽ अंग्नेऽसि तन्वं मे पाहि। आयुर्दा अंग्नेऽस्यायुर्मे देहि। वर्चोदा अंग्नेऽसि वर्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्मऽआपृंण ॥ ३३ ॥ यजु० ३ । १७ ॥

व्याख्यान—हे सर्वरक्षकेश्वराग्ने! तू हमारे शरीर का रक्षक है, सो शरीर को कृपा से पालन कर। हे महावैद्य! आप आयु (उमर) बढ़ाने वाले हो, मुझ को सुखरूप उत्तमायु दीजिये। हे अनन्त विद्यातेजयुक्त! आप "वर्चः" विद्यादि तेज अर्थात् यथार्थ विज्ञान देने वाले हो, मुझको सर्वोत्कृष्ट विद्यादि तेज देओ।

पूर्वोक्त शरीरादि की रक्षा से हम को सदा आनन्द में रक्खो और जो-जो कुछ भी शरीरादि में "ऊनम्" न्यून हो उस-उस को कृपादृष्टि से सुख और ऐश्वर्य के साथ सब प्रकार से आप पूर्ण करो। किसी आनन्द वा श्रेष्ठ पदार्थ की न्यूनता हमको न रहे।

आप के पुत्र हम लोग जब पूर्णानन्द में रहेंगे तभी आप पिता की शोभा है, क्योंकि लड़के लोग छोटी वा बड़ी चीज अथवा सुख पिता-माता को छोड़ किससे मांगें? सो आप सर्वशक्तिमान् हमारे पिता सब ऐश्वर्य तथा सुख देने वालों में पूर्ण हो ॥ ३३ ॥

पदार्थः—(तनूपाः) शरीर का रक्षक (अग्ने) हे सर्वरक्षकेश्वराग्ने! (असि) तू है (तन्वम्) शरीर को (मे) हमारे (पाहि) कृपा से पालन कर (आयुर्दाः) आयु=उमर बढ़ाने वाले (अग्ने) हे महा वैद्य! (असि) आप हो (आयुः) सुखरूप उत्तम आयु (मे) मुझ को (देहि) दीजिये (वर्चोदाः) विद्यादि तेज अर्थात् विज्ञान् देने वाले (अग्ने) हे अनन्त विद्या तेजयुक्त (असि) आप हो (वर्चः) सर्वोत्कृष्ट

विद्यादि तेज (मे) मुझ को (देहि) दो (अग्ने) [हे सब गुणों से परि-पूर्ण ईश्वर !] (यत्) जो-जो कुछ भी (मे) मेरे (तन्वाः) शरीरादि में (ऊनम्) न्यून हो (तत्) उस-उस को (मे) मेरे (आपृण) कृपादृष्टि से सुख और ऐश्वर्य के साथ सब प्रकार से पूर्ण करो ।।

अन्वयः—हे अग्ने जगदीश्वर ! यद् यस्मात्त्वं तनूपा असि तत् तस्मान्मे मम तन्वं पाहि । हे अग्ने ! यद् यस्मात् त्वमायुर्दा असि तत्तस्मान्मे मह्यं पूर्णमायुर्देहि । हे अग्ने ! यद् यस्मत्त्वं वर्चोदा असि तत्तस्मान्मे मह्यं वर्चः पूर्णविद्यां देहि । हे अग्ने ! मे मम तन्वा यद् यावदूनं बुद्धिबलशौर्यादिकमपर्याप्तमस्ति तत्तावदापृण समन्तात् प्रपूरय ।।

मूल प्रार्थना

विश्वतंश्चक्षुरुत विश्वतों मुखो विश्वतों बाहुरुत विश्वतं-स्पात् । सं बाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमी जनयंन् देव एकः ॥ ३४ ॥ यजु० १७ । १९ ॥

व्याख्यान—विश्व (सब जगत् में) जिस का चक्षु (दृष्टि) जिस से अदृष्ट कोई वस्तु नहीं, तथा सर्वत्र, मुख, बाहु, पग अन्य श्रोत्रादि भी हैं, जिसकी दृष्टि में अर्थात् सर्वदृक्, सर्ववक्ता, सर्वाधारक और सर्वगत, ईश्वर व्यापक है । उसी से जब डरेगा तभी धर्मात्मा होगा; अन्यथा कभी नहीं ।

वही विश्वकर्म्मा परमात्मा एक ही अद्वितीय है । पृथिवी से लेके स्वर्गपर्य्यन्त जगत् का कर्त्ता है । जिस २ ने जैसा २ पाप या पुण्य किया है, उस २ को न्यायकारी, दयालु, जगत्पिता पक्षपात छोड़ के अनन्त बल और पराक्रम इन दोनों बाहुओं से सम्यक् "पतत्रैः" प्राप्त होने वाले सुख-दुःख फल दोनों से प्राप्त सब जीवों को "धमति" (धमन-कम्पन) यथायोग्य जन्ममरणादि को प्राप्त करा रहा है ।

उसी निराकार, अज, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयामय ईश्वर से अन्य को कभी न मानना चाहिये । वही याचनीय, पूजनीय, हमारा प्रभु स्वामी इष्टदेव है । उसी से सुख हम को होगा; अन्य से कभी नहीं ॥ ३४ ॥

पदार्थः—(विश्वतश्चक्षुः) विश्व=सब जगत् में जिसका चक्षु=दृष्टि, जिससे अदृष्ट कोई वस्तु नहीं सर्वदृक् (उत) तथा विश्व-तोमुखः) सर्वत्रमुख / सर्ववक्ता (विश्वतोबाहुः) सर्वत्रबाहु / सर्वधारक (उत) अन्य श्रोत्रादि भी हैं (विश्वतस्पात्) सर्वत्र पग / पर्वगत (बाहु-

भ्याम्) अनन्त बल और पराक्रम इन दोनों बाहुओं से (सम्+धमति) यथायोग्य जन्म-मरणादि को प्राप्त करा रहा है (सम्+पतत्रैः) सम्यक् प्राप्त होने वाले सुख-दुःख फल दोनों से प्राप्त सब जीवों को (द्यावाभूमी) पृथिवी से ले के स्वर्ग पर्यन्त (जनयन्) जगत् का कर्त्ता है (देवः) विश्वकर्मा परमात्मा (एकः) एक ही अद्वितीय है ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यूयं यो विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वस्पाद्। एको देवः पतत्रैर्द्यावाभूमी संजनयन् सन् बाहुभ्यां सर्वं जगत् संधमति तमेवेष्टमुपास्यमभिरक्षकं परमेश्वरं जानीत ॥

मूल स्तुति

भूर्भुवः स्वः। सुप्रजाः प्रजाभिः स्याꣳ सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः। नर्य प्रजां मे पाहि। शꣳस्य पशून्मे पाहि। अथर्य पितुं मे पाहि॥ ३५॥ यजु० ३। ३७॥

व्याख्यान—हे सर्वमङ्गलकारकेश्वर! आप "भूः" सदा वर्त्तमान हो, "भुवः" वायु आदि पदार्थों के रचने वाले, "स्व" सुखरूप हो, हम को सुख दीजिये।

हे सर्वाध्यक्ष! आप कृपा करो जिससे कि मैं पुत्र पौत्रादि उत्तम गुणवाली प्रजा से श्रेष्ठ प्रजावाला होऊँ। सर्वोत्कृष्ट वीर योद्धाओं से "सुवीरः" युद्ध में सदा विजयी होऊँ। हे महापुष्टिप्रद! आप के अनुग्रह से अत्यन्त विद्यादि, तथा सोमलता आदि ओषधि, सुवर्णादि और नैरोग्यादि से सर्वपुष्टि युक्त होऊँ। हे "नर्य" नरों के हितकारक! मेरी प्रजा की रक्षा आप करो। हे "शंस्य" स्तुति करने के योग्य ईश्वर! हस्त्यश्वादि पशुओं का आप पालन करो। हे "अथर्य" व्यापक ईश्वर! "पितुम्" मेरे अन्न की रक्षा कर।

हे दयानिधे! हम लोगों को सब उत्तम पदार्थों से परिपूर्ण और सब दिन आप आनन्द में रक्खो॥ ३५॥

पदार्थः—(भूः) हे सर्वमङ्गलकारकेश्वर! आप सदा वर्त्तमान हो (भुवः) वायु आदि पदार्थों के रचने वाले (स्वः) सुखरूप (सुप्रजाः) श्रेष्ठ प्रजा वाला मैं (प्रजाभिः) पुत्र-पौत्रादि उत्तम गुण वाली प्रजा से (स्याम्) होऊँ (सुवीरः) युद्ध में सदा विजयी मैं (वीरैः) सर्वोत्कृष्ट वीर योद्धाओं से (सुपोषः) सर्वपुष्टियुक्त (पोषैः) अत्यन्त विद्यादि, सोमलता आदि ओषधि, सुवर्णादि और नैरोग्यादि से (नर्य)

हे नरों के हितकारक ईश्वर ! (प्रजाम्) प्रजा की (मे) मेरी (पाहि) रक्षा करो (शंस्य) हे स्तुति करने योग्य ईश्वर ! (पशून्) हस्त्यश्वादि पशुओं का (मे) मेरे (पाहि) पालन करो (अथर्य) हे व्यापक ईश्वर ! (पितु) अन्न की (मे) [मेरे] (पाहि) रक्षा कर ॥

अन्वयः—हे नर्य ! त्वं कृपया मम प्रजां पाहि मे मम पशून्पाहि। हे अथर्य ! मे मम पितुं पाहि। हे शंस्य जगदीश्वर ! भवत्कृपयाहं भूर्भुवः स्वः प्राणापानव्यानैर्युक्तः सन् प्रजाभिः सुप्रजा वीरैः सुवीरः पोषैः सह च सुपोषः स्यां नित्यं भवेयम् ॥

मूल प्रार्थना

किंस्वि॒द्वनं॒ क उ॒ स वृ॒क्ष ऽआ॑स॒ यतो॒ द्यावा॑पृथि॒वी नि॑ष्टत॒क्षुः। मनी॑षिणो॒ मन॑सा पृ॒च्छतेदु॒ तद्यद॒ध्यति॑ष्ठ॒द्भुव॑नानि धा॒रय॑न् ॥ ३६ ॥ यजु० १७। २० ॥

व्याख्यान—(प्रश्न) विद्या क्या है ? वन और वृक्ष किसको कहते हैं ?

(उत्तर) जिस सामर्थ्य से विश्वकर्मा ईश्वर ने जैसे तक्षा (बढ़ई) अनेक विध रचना से अनेक पदार्थ रचता है, वैसे ही स्वर्ग (सुख-विशेष) और भूमि=मध्य (सुखवाला लोक) तथा नरक (दुःख-विशेष) और सब लोकों को रचा है। उसी को वन और वृक्ष आदि कहते हैं।

हे "मनीषिणः" विद्वानो ! जो सब भुवनों का धारण करके सब जगत् में और सबके ऊपर विराजमान हो रहा है, उस के विषय में प्रश्न तथा उसका निश्चय तुम लोग करो। "मनसा" उसके विज्ञान से जीवों का कल्याण होता है; अन्यथा नहीं ॥ ३६ ॥

पदार्थः—(किंस्वित्) विद्या क्या है (वनम्) वन (कः) किस को (उ) और (सः) उसी को=विश्वकर्मा परमात्मा को (वृक्षः) वृक्ष (आस) कहते हैं (यतः) जिस सामर्थ्य से (द्यावापृथिवी) स्वर्ग सुख विशेष और भूमि मध्य=सुख वाला लोक तथा नरक=दुःखविशेष और सब लोकों को (निष्टतक्षुः) विश्वकर्मा ईश्वर ने जैसे तक्षा=बढ़ई अनेक विध रचना से अनेक पदार्थ रचता है, वैसे ही रचा है (मनीषिणः) हे विद्वानो ! (मनसा) उसके विज्ञान से (पृच्छत) प्रश्न करो (इद्) उसका निश्चय (तद्) उसके विषय में (यद्)

जो (अध्यतिष्ठत्) सब जगत् में और सबके ऊपर विराजमान हो रहा है (भुवनानि) सब भुवनों को (धारयन्) धारण करके ॥ ३६ ॥

अन्वयः—हे मनीषिणः ! यूयं मनसा विदुषः प्रति किंस्विद् वनं क उ स वृक्ष आसेति पृच्छत यतो द्यावापृथिवी को निष्टतक्षुः । यद्यो भुवनानि धारयन्नध्यतिष्ठत् तदिदु ब्रह्म विजानीतेत्युत्तरम् ।

मूल स्तुति

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ ३७ ॥

यजु० ३६ । २४ ॥

व्याख्यान—वह ब्रह्म, "चक्षुः" सर्वदृक् चेतन है, तथा देव अर्थात् विद्वानों के लिये वा मन आदि इन्द्रियों के लिये हितकारक मोक्षादि सुख का दाता है। "पुरस्तात्" सब का आदि प्रथम कारण वही है। "शुक्रम्" सब का करने वाला किंवा शुद्धस्वरूप है। "उच्चरत्" प्रलय के ऊर्ध्व वही रहता है।

उसी की कृपा से हम लोग शत (१००) वर्ष तक देखें, जीवें, सुनें, कहें, कभी पराधीन न हों, अर्थात् ब्रह्मज्ञान बुद्धि और पराक्रम सहित इन्द्रिय तथा शरीर सब स्वस्थ रहें। ऐसी कृपा आप करें कि कोई अङ्ग मेरा निर्बल (क्षीण) और रोगयुक्त न हो, तथा शत (१००) वर्ष से अधिक भी आप कृपा करें कि शत (१००) वर्ष के उपरान्त भी हम देखें, जीवें, सुनें, कहें और स्वाधीन ही रहें ॥ ३७ ॥

पदार्थः—(तत्) वह ब्रह्म (चक्षुः) सर्वदृक् चेतन है (देवहितम्) देव अर्थात् विद्वानों के लिये वा मन आदि इन्द्रियों के लिये हितकारक मोक्षादि सुख का दाता है (पुरस्तात्) सबका आदि प्रथम कारण वही है (शुक्रम्) सबका करने वाला किंवा शुद्ध स्वरूप है (उच्चरत्=उत्+चरत्) प्रलय के ऊर्ध्व वही रहता है (पश्येम) देखें (शरदः) वर्ष तक (शतम्) शत (जीवेम) जीवें (शरदः) वर्ष तक (शतम्) शत (शृणुयाम) सुनें (शरदः) वर्ष तक (शतम्) शत

(प्रब्रवाम) कहें (शरदः) वर्ष तक (शतम्) शत (अदीनाः) कभी पराधीन नहीं (स्याम) हों (शरदः) वर्ष तक (शतम्) शत (भूयः) उपरान्त (च) भी (शरदः) वर्ष (शतात्) शत (१००) से ।।

अन्वयः—हे परमात्मन् ! भवान् यद्देवहितं शुक्रं चक्षुरिव वर्त्तमानं ब्रह्म पुरस्तादुच्चरत् तत्त्वां शतं शरदः पश्येम शतं शरदो जीवेम शतं शरदः शृणुयाम शतं शरदः प्रब्रवाम शतं शरदोऽदीनाः स्याम शताच्छरदो भूयश्च पश्येम जीवेम शृणुयाम प्रब्रवामोऽदीनाः स्याम च ।।

मूल प्रार्थना

या ते धामा॑नि पर॒माणि॒ याव॒मा या म॑ध्य॒मा वि॑श्वकर्म॒न्नुतेमा। शिक्षा॒ सखि॑भ्यो ह॒विषि॑ स्वधावः स्व॒यं य॑जस्व त॒न्वं॒ वृधा॒नः ॥ ३८ ॥ यजु० १७ । २१ ॥

व्याख्यान-हे सर्वविधायक विश्वकर्मन्नीश्वर ! जो तुम्हारे सुरचित उत्तम, मध्यम, निकृष्ट त्रिविध धाम (लोक) हैं उन सब लोकों की शिक्षा हम आप के सखाओं को कर। यथार्थविद्या होने से सब लोकों में सदा सुखी ही रहें, तथा इन लोकों के "हविषि" दान और ग्रहण व्यवहार में हम लोग चतुर हों।

हे "स्वधावः" स्वसामर्थ्यादि धारण करने वाले ! हमारे शरीरादि पदार्थों का आप ही बढ़ाने वाले हैं। "यजस्व" हमारे लिये विद्वानों का सत्कार, सब सज्जनों के सुखादि की संगति, विद्यादि गुणों का दान आप स्वयं करो।

आप अपनी उदारता से ही हमको सब सुख दीजिये। किञ्च—हम लोग तो आप के प्रसन्न करने में कुछ भी समर्थ नहीं हैं, सर्वथा आप के अनुकूल वर्त्तमान नहीं कर सकते परन्तु आप तो अधमोद्धारक हैं, इस से हम को स्वकृपा से सुखी करें ॥ ३८ ॥

पदार्थः—(या) जो (ते) तुम्हारे सुरचित (धामानि) त्रिविध धाम=लोक हैं (परमाणि) उत्तम (या) जो (अवमा) निकृष्ट (या) जो (मध्यमा) मध्यम (विश्कर्मन्) हे सर्वविधायक विश्वकर्मन्नीश्वर ! (उत) तथा (इमा) उन सब लोकों की (शिक्षा) शिक्षा कर (सखिभ्यः) आपके सखाओं को (हविषि) इन लोकों के दान और ग्रहण व्यवहार में (स्वधावः) हे स्वसामर्थ्यादि धारण करने वाले !

(स्वयम्) स्वयं (यजस्व) हमारे लिये विद्वानों का सत्कार सब सज्जनों के सुखादि की संगति विद्यादि गुणों का दान करें (तन्वम्) हमारे शरीरादि पदार्थों को (वृधानः) आप ही बढ़ाने वाले हैं ॥

अन्वयः—हे स्वधावो विश्वकर्मन् जगदीश्वर ! ते सृष्टौ या परमाणि याऽवमा या मध्यमा धामानि सन्ति तानीमा हविषि स्वयं यजस्व । उताप्यस्माकं तन्वं वृधानो ऽस्मभ्यं सखिभ्यः शिक्ष ॥

मूल स्तुति

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु । शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥ ३९ ॥
यजु० ३६ । २ ॥

व्याख्यान—हे सर्वसन्धायकेश्वर ! मेरे चक्षु (नेत्र), हृदय (प्राणात्मा), मन, बुद्धि, विज्ञान, विद्या और सब इन्द्रिय, इन के छिद्र, निर्बलता, राग, द्वेष, चाञ्चल्य यद्वा मन्दत्वादि विकार इनका निवारण (निर्मूल) करके सत्य धर्मादि में स्थापन आप ही करो, क्योंकि आप बृहस्पति (सब से बड़े) हो, सो अपनी बड़ाई की ओर देख के इस बड़े काम को आप अवश्य करें, जिससे हम लोग आप और आप की आज्ञा के सेवन में यथार्थ तत्पर हों। मेरे सब छिद्रों को आप ही ढांकें।

आप सब भुवनों के पति हैं इसलिये आप से वारम्वार प्रार्थना हम लोग करते हैं कि सब दिन हम लोगों पर कृपादृष्टि से कल्याण-कारक हों।

हे परमात्मन् ! आप के विना हमारा कल्याणकारक कोई नहीं है। हम को आप का ही सब प्रकार का भरोसा है, सो आप ही पूरा करेंगे ॥ ३९ ॥

पदार्थः—(यत्) जो (मे) मेरे (छिद्रम्) छिद्र=निर्बलता, राग चांचल्य/सब छिद्रों को (चक्षुषः) चक्षु=नेत्र का (हृदयस्य) हृदय=प्राणात्मा का (मनसः) मन, बुद्धि, विज्ञान, विद्या और सब इन्द्रियों के (वा) यद्वा (अतितृण्णम्) मन्दत्वादि विकार को (बृहस्पतिः) सबसे बड़े आप (मे) मेरे (तद्) इनका निवारण=

निर्मूल करके (दधातु) सत्यधर्मादि में स्थापन करो/इन छिद्रों को आप ही ढांकें। (शम्) कल्याणकारक (नः) हम लोगों पर (भवतु) हों [(**भुवनस्य**) संसार के (यः) जो (पतिः) रक्षक] ॥

अन्वयः—यन्मे चक्षुषो हृदयस्य छिद्र मनसो वातितृण्ण-मस्ति तद् बृहस्पतिर्मे दधातु यो भुवनस्य पतिरस्ति स नः शम्भवतु ॥

मूल प्रार्थना

विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत सन्दृक् । तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऽऋषीन् पर एकमाहुः ॥ ४० ॥ यजु० १७ । २६ ॥

व्याख्यान—सर्वज्ञ, सर्वरचक, ईश्वर विश्वकर्मा (विविध-जगदुत्पादक) है, तथा "विमनाः" विविध (अनन्त) विज्ञानवाला है, तथा "आद्विहाया" सर्वव्यापक और आकाशवत् निर्विकार अक्षोभ्य सर्वाधिकरण है, वही सब जगत् का "धाता" धारणकर्त्ता है "विधाता" विविध विचित्र जगत् का उत्पादक है, तथा "परम, उत" सर्वोत्कृष्ट है, "सन्दृक्" यथावत् सब के पाप और पुण्यों को देखने वाला है।

जो मनुष्य उसी ईश्वर की भक्ति, उसी में विश्वास और उसी का सत्कार (पूजा) करते हैं, उसको छोड़ के अन्य किसी को लेशमात्र भी नहीं मानते, उन पुरुषों को ही सब इष्ट सुख मिलते हैं; औरों को नहीं। वह ईश्वर अपने भक्तों को सुख में ही रखता है और वे भक्त सम्यक् स्वेच्छापूर्वक "मदन्ति" परमानन्द में ही रहते हैं, दुःख को नहीं प्राप्त होते।

वह परमात्मा एक=अद्वितीय है, जिस परमात्मा के सामर्थ्य में सप्त अर्थात् पंच प्राण, सूत्रात्मा और धनञ्जय ये सब प्रलयविषयक कारणभूत ही रहते हैं।

वही जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय में निर्विकार आनन्द-स्वरूप रहता है। उसी की उपासना करने से हम सदा सुख में रह सकते हैं ॥ ४० ॥

पदार्थः—(विश्वकर्मा) सर्वज्ञ, सर्वरचक ईश्वर विविध

निर्मूल करके (दधातु) सत्यधर्मादि में स्थापन करो/इन छिद्रों को आप ही ढांकें। (शम्) कल्याणकारक (नः) हम लोगों पर (भवतु) हों [(भुवनस्य) संसार के (यः) जो (पतिः) रक्षक] ।।

अन्वयः—यन्मे चक्षुषो हृदयस्य छिद्र मनसो वातितृण्ण-मस्ति तद् बृहस्पतिर्मे दधातु यो भुवनस्य पतिरस्ति स नः शम्भवतु ।।

मूल प्रार्थना

विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत सन्दृक्। तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऽऋषीन् पर एकमाहुः ॥ ४० ॥ यजु० १७ । २६ ॥

व्याख्यान—सर्वज्ञ, सर्वरचक, ईश्वर विश्वकर्मा (विविध-जगदुत्पादक) है, तथा "विमनाः" विविध (अनन्त) विज्ञानवाला है, तथा "आद्विहाया" सर्वव्यापक और आकाशवत् निर्विकार अक्षोभ्य सर्वाधिकरण है, वही सब जगत् का "धाता" धारणकर्त्ता है "विधाता" विविध विचित्र जगत् का उत्पादक है, तथा "परम, उत" सर्वोत्कृष्ट है, "सन्दृक्" यथावत् सब के पाप और पुण्यों को देखने वाला है।

जो मनुष्य उसी ईश्वर की भक्ति, उसी में विश्वास और उसी का सत्कार (पूजा) करते हैं, उसको छोड़ के अन्य किसी को लेशमात्र भी नहीं मानते, उन पुरुषों को ही सब इष्ट सुख मिलते हैं; औरों को नहीं। वह ईश्वर अपने भक्तों को सुख में ही रखता है और वे भक्त सम्यक् स्वेच्छापूर्वक "मदन्ति" परमानन्द में ही रहते हैं, दुःख को नहीं प्राप्त होते।

वह परमात्मा एक=अद्वितीय है, जिस परमात्मा के सामर्थ्य में सप्त अर्थात् पंच प्राण, सूत्रात्मा और धनञ्जय ये सब प्रलयविषयक कारणभूत ही रहते हैं।

वही जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय में निर्विकार आनन्द-स्वरूप रहता है। उसी की उपासना करने से हम सदा सुख में रह सकते हैं ॥ ४० ॥

पदार्थः—(विश्वकर्मा) सर्वज्ञ, सर्वरचक ईश्वर विविध

जगदुत्पादक है (विमनाः) विविध=अनन्त विज्ञान वाला है (आद्-विहाया) सर्वव्यापक और आकाशवत् निर्विकार अक्षोभ्य सर्वाधिकरण है (धाता) सब जगत् का धारण कर्त्ता है (विधाता) विविध विचित्र जगत् का उत्पादक है (परमः) सर्वोत्कृष्ट है (उत) तथा (सन्दृक्) यथावत् सब के पाप और पुण्यों को देखने वाला है (तेषाम्) उन पुरुषों को (इष्टानि) सब इष्ट सुख मिलते हैं (सम्) सम्यक् (इषा) स्वेच्छा-पूर्वक (मदन्ति) परमानन्द में ही रहते हैं (यत्र) जिस परमात्मा के सामर्थ्य में (सप्त) सप्त अर्थात् (ऋषीन्) पंच प्राण, सूत्रात्मा और धनञ्जय (पर) वह परमात्मा (एकम्) एक अद्वितीय (आहुः) है ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! विश्वकर्मा यो विमना विहाया धाता विधाता संदृक् परोऽस्ति यमेकमाहुराद् यत्र सप्तऋषीन् प्राप्येषा जीवाः संमदन्त्युत यस्तेषां परमेष्टानि साध्नोति तं परमेश्वरं यूयमुपाध्वम् ॥



मूल स्तुति

चतुः स्रक्तिर्नाभिर्ऋतस्य सप्रथाः स नो विश्वायुः सप्रथाः स नः सर्वायुः सप्रथाः । अप द्वेषो ऽअप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिम ॥ ४१ ॥ यजु० ३८ । २० ॥

व्याख्यान—हे महावैद्य ! सर्वरोगनाशकेश्वर ! चार कोणेवाली नाभि (मर्मस्थान) ऋत की भरी, नैरोग्य और विज्ञान का घर "सप्रथाः" विस्तीर्ण सुखयुक्त आप की कृपा से हो, तथा आप की कृपा से "विश्वायुः" पूर्ण आयु हो। आप जैसे सर्वसामर्थ्य विस्तीर्ण हो, वैसे ही विस्तृत सुख से विस्तार सहित सर्वायु हमको दीजिये।

हे ईश ! हम "अपद्वेषः" द्वेष रहित आपकी कृपा से तथा "अपह्वरः" चलन (कम्पन) रहित हों। आप की आज्ञा और आप से भिन्न को लेशमात्र भी ईश्वर न मानें, यही हमारा व्रत है। इससे अन्य व्रत को कभी न मानें किन्तु आप को "सश्चिम" सदा सेवें यही हमारा परमनिश्चय है इस परमनिश्चय की रक्षा आप ही कृपा से करें ॥ ४१ ॥

पदार्थः—(चतुःस्रक्तिः) चार कोणे वाली (नाभिः) नाभिः=मर्मस्थान (ऋतस्य) ऋत की भरी नैरोग्य और विज्ञान का घर (सप्रथाः) विस्तीर्ण सुखयुक्त (सः) वह (नः) [हमारी] (विश्वायुः) पूर्ण आयु हो (सप्रथाः) जैसे सर्वसामर्थ्य से विस्तीर्ण हो वैसे (सः) आप (नः) हमको (सर्वायुः) सर्वायु (सप्रथाः) विस्तृत सुख से विस्तार सहित (अपद्वेषः) द्वेष रहित (अपह्वरः) चलन=कम्पन रहित हो

(अन्यव्रतस्य) आपकी आज्ञा और आपसे भिन्न को लेशमात्र भी ईश्वर न मानें यही हमारा व्रत है (सश्चिम) आपको सदा सेवें ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा चतुःस्रक्तिर्नाभिरिव सप्रथा अन्यव्रतस्य ऋतस्य परमात्मनः सेवां करोति स सप्रथा विश्वायुर्नोऽस्मान् बोधयतु स सप्रथाः सर्वायुर्नः परमेश्वरविद्यां ग्राहयतु येन वयं द्वेषो ह्वरोऽपसश्चिम तथा यूयमपि कुरुत ॥

मूल प्रार्थना

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा । यो देवानां नामधा एक एव तꣳ सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥ ४२ ॥ यज० १७ । २७ ॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो ! जो अपना पिता (नित्य पालन करनेवाला), जनिता (जनक) उत्पादक, "विधाता" सब मोक्षसुखादि कामों का विधायक (सिद्धिकर्त्ता), "विश्वा" सब भुवन लोकलोकान्तर धाम अर्थात् स्थिति के स्थानों को यथावत् जाननेवाला, सब जातमात्र भूतों में विद्यमान है ।

जो दिव्य सूर्यादिलोक तथा इन्द्रियादि और विद्वानों का नाम व्यवस्थादि करनेवाला एक=अद्वितीय वही है; अन्य कोई नहीं । वही स्वामी और पितादि हम लोगों का है, इसमें शंका नहीं रखनी, तथा उसी परमात्मा के सम्यक् प्रश्नोत्तर करने में विद्वान् वेदादि शास्त्र और प्राणीमात्र प्राप्त हो रहे हैं । क्योंकि—

सब पुरुषार्थ यही है कि परमात्मा, उस की आज्ञा और उस के रचे जगत् का यथार्थ से निश्चय (ज्ञान) करना । उसी से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार प्रकार के पुरुषार्थ के फलों की सिद्धि होती है; अन्यथा नहीं । इस हेतु से तन, मन, धन और आत्मा इनसे प्रयत्नपूर्वक ईश्वर के साहाय्य से सब मनुष्यों को धर्मादि पदार्थों की यथावत् सिद्धि अवश्य करनी चाहिये ॥ ४२ ॥

पदार्थः—(यः) जो (नः) अपना (पिता) नित्य पालन करने वाला (जनिता) जनक=उत्पादक (यः) जो (विधाता) सब मोक्ष सुखादि कामों का विधायक=सिद्धिकर्त्ता (धामानि) स्थिति के स्थानों

को (वेद) यथावत् जानने वाला है। सब जातमात्र भूतों में विद्यमान है (भुवनानि) लोकलोकान्तरों को (विश्वा) सब (यः) जो (देवानाम्) दिव्य सूर्यादि लोक तथा इन्द्रियादि और विद्वानों का (नामधा) नाम व्यवस्थादि करने वाला (एकः) एक अद्वितीय (एव) वही है (तम्) उसी परमात्मा के (सम्प्रश्नम्) सम्यक् प्रश्नोत्तर करने में (भुवना) विद्वान्, वेदादिशास्त्र (यन्ति) प्राप्त हो रहे हैं (अन्या) प्राणी मात्र ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः! यो नः पिता जनिता यो विधाता विश्वा भुवनानि धामानि वेद यो देवानां नामधा एक एवास्ति यमन्या भुवना यन्ति सम्प्रश्नं तं यूयं जानीत ॥

मूल स्तुति

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति । दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ४३ ॥

यजु० ३४ । १ ॥

व्याख्यान—हे धर्म्मनिरुपद्रव परमात्मन् ! मेरा मन सदा शिवसंकल्प=धर्मकल्याणसंकल्पकारी ही आप की कृपा से हो, कभी अधर्मकारी न हो। वह मन कैसा है ? कि जागते हुए पुरुष का दूर-दूर जाता आता है, दूर जाने का जिस का स्वभाव ही है, अग्नि, सूर्यादि, श्रोत्रादि इन्द्रिय, इन ज्योति=प्रकाशकों का भी ज्योति= प्रकाशक है, अर्थात् मन के विना किसी पदार्थ का प्रकाश कभी नहीं होता। वह एक बड़ा चञ्चल वेग वाला मन आप की कृपा से स्थिर, शुद्ध, धर्म्मात्मा, विद्यायुक्त हो सकता है "दैवम्" देव (आत्मा का) मुख्य साधक भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान-काल का ज्ञाता है। वह आप के वश में ही है, उस को आप हमारे वश में यथावत् करें। जिस से हम कुकर्म्म में कभी न फसें, सदैव विद्या, धर्म्म और आपकी सेवा में ही रहें ॥ ४३ ॥

पदार्थः—(यत्) [जो] (जाग्रतः) जागते हुए पुरुष का (दूरम्) दूर-दूर (उदैति) जाता आता है (दैवम्) देव=आत्मा का साधक मुख्य साधक, भूत भविष्यत् वर्त्तमान काल का ज्ञाता है [(तद्) वह मन (उ) निश्चय से (सुप्तस्थ) सोते हुए पुरुष का (तथैव) वैसे ही (एति) जाता आता है] (दूरङ्गमम्) दूर जाने का जिसका स्वभाव ही है (ज्योतिषाम्) अग्नि सूर्यादि, श्रोत्रादि इन्द्रिय इन ज्योति-प्रकाशकों का भी (ज्योतिः) प्रकाशक है (एकम्) एक बड़ा चंचल वेग

वाला (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) शिवसंकल्प= धर्म, कल्याण संकल्पकारी, स्थिर, शुद्ध, धर्मात्मा, विद्यायुक्त (अस्तु) आपकी कृपा से हो/हो सकता है ॥

अन्वयः—हे जगदीश्वर विद्वन् वा ! भवदनुग्रहेण यद्दैवं दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं जाग्रतो दूरमुदैति। तदु सुप्तस्य तथैवान्तरेति तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥



मूल प्रार्थना

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव ।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ॥ ४४ ॥
यजु० १७ । ३१ ॥

व्याख्यान—हे जीवो ! जो परमात्मा इन सब भुवनों का बनानेवाला विश्वकर्मा है उसको तुम लोग नहीं जानते हो । इसी हेतु से तुम "नीहारेण" अत्यन्त अविद्या से आवृत मिथ्यावाद नास्तिकत्व बकवाद करते हो । इससे दुःख ही तुम को मिलेगा; सुख नहीं । तुम लोग "असुतृपः" केवल स्वार्थसाधक प्राणपोषणमात्र में ही प्रवृत्त हो रहे हो । "उक्थशासश्चरन्ति" केवल विषय भोगों के लिये ही अवैदिककर्म करने में प्रवृत्त हो रहे हो । और जिसने ये सब भुवन रचे हैं उस सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, परब्रह्म से उलटे चलते हो । अतएव उसको तुम नहीं जानते ।

(प्रश्न) वह ब्रह्म और हम जीवात्मा लोग ये दोनों एक हैं नहीं ?

(उत्तर) "यद्युष्माकमन्तरं बभूव" ब्रह्म और जीव की एकता वेद और युक्ति से सिद्ध कभी नहीं हो सकती, क्योंकि जीव ब्रह्म का पूर्व से ही भेद है ।

जीव अविद्या आदि दोषयुक्त है ब्रह्म अविद्यादि दोषयुक्त नहीं है इस से यह निश्चित है कि जीव और ब्रह्म एक न थे, न होंगे और न हैं । किंच—व्याप्यव्यापक, आधाराधेय, सेव्यसेवकादि सम्बन्ध तो जीव के साथ ब्रह्म का है । इस से जीव ब्रह्म की एकता मानना किसी मनुष्य को योग्य नहीं ॥ ४४ ॥

पदार्थः—(न) नहीं (तम्) उसको (विदाथ) तुम लोग जानते

हो (यः) जो परमात्मा (इमा) इन सब भुवनों का (जजान) बनाने वाला है, विश्वकर्मा है (अन्यत्) एकता वेद और युक्ति से सिद्ध कभी नहीं हो सकती (युष्माकम्) ब्रह्म और जीव की (अन्तरम्) जीव-ब्रह्म का भेद (बभूव) पूर्व से ही है (नीहारेण) अत्यन्त अविद्या से (प्रावृताः) आवृत (जल्प्या) नास्तिकत्व बकवाद करते हो (च) और (असुतृपः) केवल स्वार्थ-साधक, प्राण पोषण मात्र में प्रवृत्त (उक्थ-शासः) केवल विषय-भोगों के लिये ही अवैदिक कर्म करने में प्रवृत्त (चरन्ति) परब्रह्म से उलटे चलते हो ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथाऽब्रह्मविदो जना नीहारेण चाज्ञानेन प्रावृता जल्प्या असुतृपश्चोक्थशासश्चरन्ति तथा भूता यूयं तं न विदाथ य इमा जजान यद् ब्रह्म युष्माकं सकाशादन्यदन्तरं बभूव तददतिसूक्ष्ममात्मन आत्मभूतं न विदाथ ॥

मूल स्तुति

भग एव भगवाँ२ऽअस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुर एता भवेह ॥४५॥
यजु० ३४ । ३८ ॥

व्याख्यान—हे सर्वाधिपते, महाराजेश्वर ! आप भग परमैश्वर्यस्वरूप होने से भगवान् हो । हे (देवाः) विद्वानो ! "तेन" (भगवता प्रसन्नेश्वरसहायेन) उस भगवान् प्रसन्न ईश्वर के सहाय से हम लोग परमैश्वर्ययुक्त हों ।

हे "भग" परमेश्वर ! सर्व संसार "तन्त्वा" उन आप को ही ग्रहण करने को अत्यन्त इच्छा करता है, क्योंकि कौन ऐसा भाग्यहीन मनुष्य है जो आप को प्राप्त होने की इच्छा न करे । सो आप हम को प्रथम से प्राप्त हों, फिर कभी हम से आप और ऐश्वर्य अलग न हो । आप अपनी कृपा से इसी जन्म में परमैश्वर्य्य का यथावत् भोग हम लोगों को करावें, परजन्म में तो कर्मानुसार फल होता ही है, तथा आप की सेवा में हम नित्य तत्पर रहें ॥ ४५ ॥

पदार्थः—हे सर्वाधिपते महाराजेश्वर ! आप भग=परमैश्वर्ययुक्त (एव) होने से (भगवान्) भगवान् (अस्तु) हो (देवाः) हे विद्वानो ! (तेन) उस भगवान् प्रसन्न ईश्वर के सहाय से (वयम्) हम लोग (भगवन्तः) परमैश्वर्ययुक्त (स्याम) हों (तम्) उन (त्वा) आपको (भग) हे परमेश्वर ! (सर्वः) सर्व संसार (इत्) ही (जोहवीति) ग्रहण करने को अत्यन्त इच्छा करता है (सः) सो (नः) हम को (भग) आप (पुरः) प्रथम से (एता) प्राप्त (भव) हों (इह) इसी जन्म में ॥

अन्वयः—हे देवाः ! यो भग एव भगवानस्तु तेन वयं भगवन्तः स्याम । हे भग ! तं त्वा सर्व इज्जोहवीति । भग ! स त्वम् इह नः पुर एता भव ॥ ●

मूल प्रार्थना

गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम। अहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ॥ ४६ ॥ यजु० २३ । १९ ॥

व्याख्यान—हे समूहाधिपते ! आप मेरे सब समूहों के पति होने से आपको गणपति नाम से ग्रहण करता हूँ तथा मेरे प्रिय कर्मकारी पदार्थ और जनों के पालक भी आप ही हैं। इनसे आपको प्रियपति मैं अवश्य जानूं। इसी प्रकार मेरी सब निधियों के पति होने से आप को मैं निश्चित निधिपति जानूँ।

हे "वसो" सब जगत् को जिस सामर्थ्य से उत्पन्न किया है, उस अपने सामर्थ्य का धारण और पोषण करने वाला आप को ही मैं जानूं। सब का कारण आपका सामर्थ्य है, यही सब जगत् का धारण और पोषण करता है। यह जीवादि जगत् तो जन्मता और मरता है परन्तु आप सदैव अजन्मा और अमृतस्वरूप हैं। आप की कृपा से अधर्म, अविद्या, दुष्टभावादि को "अजानि" दूर फेंकूँ तथा हम सब लोग आप की ही "हवामहे" अत्यन्त स्पर्धा (प्राप्ति की इच्छा) करते हैं।

सो आप अब शीघ्र हम को प्राप्त होओ जो प्राप्त होने में आप थोड़ा भी विलम्ब करेंगे तो हमारा कुछ भी ठिकाना न लगेगा ॥ ४६ ॥

पदार्थः—(गणानाम्) हे समूहाधिपते ! आप मेरे सब समूहों के पति होने से (त्वा) आपको (गणपतिम्) गणपति नाम से (हवामहे) ग्रहण करता हूँ (प्रियाणाम्) मेरे प्रिय कर्मकारी, पदार्थ और जनों के पालक भी आप ही हो (त्वा) आपको (प्रियपतिम्) प्रिय पति

(हवामहे) मैं अवश्य जानूं (निधीनाम्) सब निधियों के पति होने से (त्वा) आपको (निधिपतिम्) निश्चित निधिपति (हवामहे) जानूं (वसो) हे वसो ! (मम) अपने सामर्थ्य का (अहम्) मैं (अजानि) दूर फैंकूं (गर्भधम्) सब जगत् को जिस सामर्थ्य से उत्पन्न किया है उस अपने सामर्थ्य का धारण और पोषण करने वाला आपको/ सबका कारण आपका सामर्थ्य जो सब जगत् का धारण पोषण करता है/अधर्म, अविद्या, दुष्टभावादि को (आ) सदैव (त्वम्) आप (अजासि) अजन्मा और अमृत स्वरूप हैं (गर्भधम्) यह जीवादि जगत् तो जन्मता और मरता है ।।

अन्वयः—हे समूहाधिपते जगदीश्वर ! वयं गणानां गणपतिं त्वा हवामहे प्रियाणां प्रियपतिं त्वा हवामहे । निधीनां निधिपतिं त्वा हवामहे । हे वसो ! मम न्यायाधीशो भूयाः । यं गर्भधं त्वमाजासि तं गर्भधमहमाजानि ।।

मूल प्रार्थना

**अग्ने॑ व्रतपते व्र॒तं च॑रिष्या॒मि तच्छ॑केयं॒ तन्मे॑ राध्यताम् ।
इ॒दम॒हमनृ॑तात्स॒त्यमुपै॑मि ॥ ४७ ॥ यजु० १ । ५ ॥**

व्याख्यान—हे सच्चिदानन्द स्वप्रकाशस्वरूप ईश्वराग्ने ! ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास आदि सत्यव्रतों का आचरण मैं करूँगा सो इस व्रत को आप कृपा से सम्यक् सिद्ध करें, तथा मैं अनृत=अनित्य देहादि पदार्थों से पृथक् हो के इस यथार्थ=सत्य जिसका कभी व्यभिचार विनाश नहीं होता उस विद्यादिलक्षण धर्म को प्राप्त होता हूँ ।

इस मेरी इच्छा को आप पूरी करें जिससे मैं सभ्य, विद्वान्, सत्याचरणी आप की भक्तियुक्त धर्मात्मा होऊँ ॥ ४७ ॥

पदार्थः—(अग्ने) हे सच्चिदानन्द स्वप्रकाशस्वरूप ईश्वराग्ने! (व्रतपते) हे व्रतों के पालक ईश्वर ! (व्रतम्) ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास आदि सत्य व्रतों का (चरिष्यामि) आचरण मैं करूंगा (तत्) मैं सभ्य विद्वान् सत्याचरणी धर्मात्मा, आपकी भक्तियुक्त (शकेयम्) होऊँ (तत्) सो इस व्रत को (मे) मेरी (राध्यताम्) सम्यक् सिद्ध करें/इच्छा को आप पूरी करें (इदम्) इस (अहम्) मैं (अनृतात्) अमृत=अनित्य देहादि पदार्थों से पृथक् होके (सत्यम्) यथार्थ सत्य जिसका कभी व्यभिचार=नाश नहीं होता उस विद्यादि-लक्षण युक्त धर्म को (उपैमि) प्राप्त होऊँ ॥

अन्वयः—हे व्रतपते अग्ने सत्यधर्मोपदेशकेश्वर ! अहं यदिद-मनृतात् पृथग्वर्त्तमानं सत्यं व्रतमाचरिष्यामि तन्मे मम भवता स्व-कृपया राध्यतां संसेध्यतां यदुपैमि प्राप्नोमि यच्चानुष्ठातुं शकेयं तदपि सर्वं राध्यतां संसेध्यताम् ॥ ●

मूल स्तुति

य आ॑त्म॒दा ब॑ल॒दा यस्य॒ विश्व॑ऽउ॒पास॑ते प्र॒शिषं॒ यस्य॑ दे॒वाः । यस्य॑ च्छा॒यामृतं॒ यस्य॑ मृ॒त्युः कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥ ४८ ॥ यजु० २५ । १३ ॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो ! जो परमात्मा अपने लोगों को "आत्मदाः" आत्मा का देनेवाला तथा आत्मज्ञानादि का दाता है जीवप्राणदाता, तथा "बलदाः" त्रिविध बल—एक मानस विज्ञानबल, द्वितीय इन्द्रियबल अर्थात् श्रोत्रादि को स्वस्थता तेजोवृद्धि, तृतीय शरीरबल महापुष्टि दृढाङ्गता और वीर्यादि वृद्धि इन तीनों बलों का जो दाता है, जिसके "प्रशिषम्" अनुशासन (शिक्षामर्यादा) को यथावत् विद्वान् लोग मानते हैं। सब प्राणी और अप्राणी=जड़ चेतन, विद्वान् वा मूर्ख उस परमात्मा के नियमों को कोई कभी उल्लङ्घन नहीं कर सकता; जैसे कि कान से सुनना, आँख से देखना इसको उलटा कोई नहीं कर सकता है। जिसकी छाया=आश्रय ही अमृत=विज्ञानी लोगों का मोक्ष कहाता है, तथा जिसकी अछाया (अकृपा) दुष्ट जनों के लिये वारम्वार मरण और जन्मरूप महाक्लेशदायक है।

हे सज्जन मित्रो ! वही एक परमसुखदायक पिता है। आओ अपने सब मिल के प्रेम विश्वास और भक्ति करें, कभी उसको छोड़ के अन्य को उपास्य न मानें। वह अपने को अत्यन्त सुख देगा इस में कुछ सन्देह नहीं ॥ ४८ ॥

पदार्थः—(यः) जो परमात्मा (आत्मदाः) आत्मा का देने वाला तथा आत्मज्ञानादि का दाता है, जीव प्राणदाता (बलदा) त्रिविध बल (विज्ञानबल, इन्द्रियबल, शरीरबल) का दाता (यस्य) जिसके (विश्वे) सब प्राणी-अप्राणी, जड़-चेतन, विद्वान् वा मूर्ख

(उपासते) यथावत् मानते हैं (प्रशिषम्) अनुशासन=शिक्षा मर्यादा को (यस्य) उस परमात्मा के नियमों का (देवाः) विद्वान् लोग (यस्य) जिसकी (छाया) आश्रय ही (अमृतम्) विज्ञानी लोगों का मोक्ष कहाता है (यस्य) जिसकी अच्छाया=अकृपा (मृत्युः) दुष्ट जनों के लिये वारम्वार मरण और जन्मरूप महाक्लेशदायक है (कस्मै) परमसुखदायक (देवाय) पिता की (हविषा) हम सब मिलकर प्रेम विश्वास और भक्ति (विधेम) करें ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! य आत्मदा बलदा यस्य प्रशिषं विश्वे देवा उपासते यस्य सकाशात् सर्वे व्यवहारा जायन्ते यस्यच्छायाऽमृतं यस्याज्ञाभङ्गो मृत्युस्तस्मै कस्मै देवाय वयं हविषा विधेम ॥

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्

मूल स्तुति

उपहूताऽइह गावऽउपहूताऽअजावयः। अथोऽअन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः। क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपद्ये शिवꣳशग्मꣳ शंय्योः शंय्योः ॥ ४९ ॥ यजु० ३। ४३ ॥

व्याख्यान—हे पश्वाधिपते, महात्मन् ! आप की ही कृपा से उत्तम-उत्तम गाय, भैंस, घोड़े, हाथी, बकरी, भेड़ तथा उपलक्षण से अन्य सुखदायक पशु और अन्न, सर्वरोगनाशक ओषधियों का उत्कृष्ट रस "नः" हमारे घरों में नित्य स्थिर (प्राप्त) रख। जिससे किसी पदार्थ के विना हम को दुःख न हो।

हे विद्वानो ! "वः" युष्माकम् तुम्हारे संग और ईश्वर की कृपा से क्षेम-कुशलता और शान्ति तथा सर्वोपद्रव विनाश के लिये "शिवम्" मोक्ष-सुख, "शग्मम्" और इस संसार के सुख को मैं यथावत् प्राप्त होऊँ। मोक्ष-सुख और प्रजा सुख इन दोनों की कामना करनेवाला जो मैं हूँ, उन मेरी उक्त दोनों कामनाओं को आप यथावत् शीघ्र पूरी कीजिये।

आपका यही स्वभाव है कि अपने भक्तों की कामना अवश्य पूरी करना ॥ ४६ ॥

पदार्थः—(उपहूताः) नित्य स्थिर=प्राप्त रख (इह) [इस संसार में] (गावः) उत्तम गाय, भैंस, घोड़े, हाथी (उपहूताः) नित्य स्थिर=प्राप्त रख (अजावयः) बकरी, भेड़ तथा उपलक्षण से अन्य सुखदायक पशु (अथो) और (अन्नस्य) अन्न, सर्वरोगनाशक ओषधियों का (कीलालः) उत्कृष्ट रस (उपहूतः) नित्य स्थिर=प्राप्त रख (गृहेषु) घरों में (नः) हमारे (क्षेमाय) कुशलता के लिये (वः) तुम्हारे

(शान्त्यै) शान्ति तथा सर्वोपद्रव विनाश के लिये (प्रपद्ये) मैं यथावत् प्राप्त होऊँ (शिवम्) मोक्ष-सुख को (शग्मम्) इस संसार के सुख को (शंयोः) मोक्ष सुख की कामना (शंयोः) प्रजा सुख की कामना ।।

अन्वयः—इहास्मिन् संसारे वो युष्माकं (संगेन कृपया वा) शान्त्यै नोऽस्माकं क्षेमाय गृहेषु गाव उपहूता अजावय उपहूता अथोऽन्नस्य कीलल उपहूतोऽस्त्वेवं कुर्वन्नहं गृहस्थः शंयोः शिवं शग्मं च प्रपद्ये ।।

मूल प्रार्थना

तमीशा॑नं॒ जग॑तस्त॒स्थुष॒स्पतिं॑ धियञ्जि॒न्वमव॑से हूमहे व॒यम् ।
पू॒षा नो॒ यथा॒ वेद॑सा॒मस॑द्वृ॒धे र॑क्षि॒ता पा॒युरद॑ब्धः स्व॒स्तये॑ ।५०।
यजु० २५ । १८ ॥

व्याख्यान—हे सुख और मोक्ष की इच्छा करने वाले जनो ! उस परमात्मा को ही "हूमहे" हम लोग प्राप्त होने के लिये अत्यन्त स्पर्धा करते हैं कि उस को हम कब मिलेंगे, क्योंकि वह ईशान (सब जगत् का स्वामी) है और ईशन (उत्पादन) करने की इच्छा करने-वाला है। दो प्रकार का जगत् है अर्थात् चर और अचर, इन दोनों प्रकार के जगत् का पालन करने वाला वही है। "धियञ्जिन्वम्" विज्ञानमय, विज्ञानप्रद और तृप्तिकारक ईश्वर से अन्य कोई नहीं है। उसको "अवसे" अपनी रक्षा के लिये हम स्पर्धा (इच्छा) से आह्वान करते हैं ॥

जैसे वह ईश्वर "पूषा" हमारे लिये पोषणप्रद है वैसे ही "वेदसाम्" धन और विज्ञानों की बृद्धि का "रक्षिता" रक्षक है, तथा "स्वस्तये" निरुपद्रवता के लिये हमारा "पायुः" पालक वही है, और "अदब्धः" हिंसारहित है।

इसलिये ईश्वर जो निराकार, सर्वानन्दप्रद है, हे मनुष्यो ! उस को मत भूलो, विना उसके कोई सुख का ठिकाना नहीं है ॥ ५० ॥

पदार्थः—(तम्) उस परमात्मा को (ईशानम्) सब जगत् के स्वामी और ईशन उत्पादन करने की इच्छा करने वाले को (जगतः) चर जगत् का (तस्थुषः) अचर जगत् का (पतिम्) पालन करने वाले को (धियम्) विज्ञानमय, विज्ञानप्रद को (जिन्वम्) तृप्तिकारक

को (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (हूमहे) अत्यन्त स्पर्धा करते हैं/स्पर्द्धा=इच्छा से आह्वान करते हैं (वयम्) हम लोग (पूषा) पोषणप्रद है (नः) हमारे लिये (यथा) जैसे (वेदसाम्) धन और विज्ञानों की (असत्) है (वृधे) वृद्धि का (रक्षिता) रक्षक (पायुः) पालक (अदब्धः) हिंसारहित (स्वस्तये) निरुपद्रवता के लिये ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! वयमवसे जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वं तमीशानं हूमहे स यथा नो वेदसां वृधे पूषा रक्षिता स्वस्तये पायुरदब्धोऽसत्तथा यूयं कुरुत स न युष्मभ्यमप्यस्तु ॥

मूल स्तुति

मयीदमिन्द्रऽइन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम्।
अस्माकꣳ सन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिषः ॥ ५१ ॥
यजु० २ । १० ॥

व्याख्यान—हे इन्द्र परमैश्वर्यवन् ईश्वर ! "मयि" मुझ में विज्ञानादिशुद्ध इन्द्रिय "रायः" और उत्तम धन को "मघवान" परम धनवान् आप "सचन्ताम्" सद्यः प्राप्त करो।

हे सर्व काम पूर्ण करने वाले ईश्वर ! आपकी कृपा से हमारी आशा सत्य ही होनी चाहिये, (पुनरुक्त अत्यन्त प्रेम और त्वरा द्योतनार्थ है)। हे भगवन् ! हम लोगों की इच्छा आप शीघ्र ही सत्य कीजिये जिससे हमारी न्याययुक्त इच्छा के सिद्ध होने से हम लोग परमानन्द में सदा रहें ॥ ५१ ॥

पदार्थः—(मयि) मुझ में (इदम्) विज्ञानादि (इन्द्र) हे परमैश्वर्यवन् ईश्वर ! (इन्द्रियम्) शुद्ध इन्द्रिय को (दधातु) [धारण करो] (अस्मान्) [हमको] (रायः) उत्तम धन को (मघवान.) परमधनवान् आप (सचन्ताम्) सद्यः प्राप्त करो (अस्माकम्) हमारी (सन्तु) होनी चाहिये (आशिषः) आशा (सत्याः) सत्य ही (नः) हम लोगों की (सन्तु) शीघ्र ही कीजिये (आशिषः) इच्छा ॥

अन्वयः—हे परमैश्वर्यवन् ईश्वर ! मयीदम् इन्द्रियं रायश्च दधातु। तत्कृपया स्वपुरुषार्थेन च यथा वयं मघवानो भवेम तथाऽस्मान् रायः सचन्ताम्। एवञ्चास्माकमाशिषः सत्याः सन्तु। नोऽस्माकं चाशिषः न्यायेच्छाविशिष्टाः क्रियाः सत्याः सन्तु ॥

को (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (हूमहे) अत्यन्त स्पर्धा करते हैं/स्पर्द्धा=इच्छा से आह्वान करते हैं (वयम्) हम लोग (पूषा) पोषणप्रद है (नः) हमारे लिये (यथा) जैसे (वेदसाम्) धन और विज्ञानों की (असत्) है (वृधे) वृद्धि का (रक्षिता) रक्षक (पायुः) पालक (अदब्धः) हिंसारहित (स्वस्तये) निरुपद्रवता के लिये ।।

अन्वयः—हे मनुष्याः ! वयमवसे जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वं तमीशानं हूमहे स यथा नो वेदसां वृधे पूषा रक्षिता स्वस्तये पायुरदब्धोऽसत्तथा यूयं कुरुत स च युष्मभ्यमप्यस्तु ।।

मूल स्तुति

मयीदमिन्द्रऽइन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम्।
अस्माकꣳ सन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिषः ॥ ५१ ॥
यजु० २ । १० ॥

व्याख्यान—हे इन्द्र परमैश्वर्यवन् ईश्वर ! "मयि" मुझ में विज्ञानादिशुद्ध इन्द्रिय "रायः" और उत्तम धन को ' मघवानः" परम धनवान् आप "सचन्ताम्" सद्यः प्राप्त करो ।

हे सर्व काम पूर्ण करने वाले ईश्वर ! आपकी कृपा से हमारी आशा सत्य ही होनी चाहिये, (पुनरुक्त अत्यन्त प्रेम और त्वरा द्योतनार्थ है)। हे भगवन् ! हम लोगों की इच्छा आप शीघ्र ही सत्य कीजिये जिससे हमारी न्याययुक्त इच्छा के सिद्ध होने से हम लोग परमानन्द में सदा रहें ॥ ५१ ॥

पदार्थः—(मयि) मुझ में (इदम्) विज्ञानादि (इन्द्र) हे परमैश्वर्यवन् ईश्वर ! (इन्द्रियम्) शुद्ध इन्द्रिय को (दधातु) [धारण करो] (अस्मान्) [हमको] (रायः) उत्तम धन को (मघवान.) परमधनवान् आप (सचन्ताम्) सद्यः प्राप्त करो (अस्माकम्) हमारी (सन्तु) होनी चाहिये (आशिषः) आशा (सत्याः) सत्य ही (नः) हम लोगों की (सन्तु) शीघ्र ही कीजिये (आशिषः) इच्छा ॥

अन्वयः—हे परमैश्वर्यवन् ईश्वर ! मयीदम् इन्द्रियं रायश्च दधातु । तत्कृपया स्वपुरुषार्थेन च यथा वयं मघवानो भवेम तथाऽस्मान् रायः सचन्ताम् । एवञ्चास्माकमाशिषः सत्याः सन्तु । नोऽस्माकं चाशिषः न्यायेच्छाविशिष्टाः क्रियाः सत्याः सन्तु ॥

मूल प्रार्थना

सदंसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्। सनिंमेधामयासिषश्रं स्वाहा ॥ ५२ ॥ यजु० ३२ । १३ ॥

व्याख्यान—हे सभापते, विद्यामय, न्यायकारिन्, सभासद् सभाप्रिय ! सभा ही हमारा राजा न्यायकारी हो, ऐसी इच्छा वाले आप हमको कीजिये। किसी एक मनुष्य को हम लोग राजा कभी न मानें, किन्तु आप को ही हम सभापति, सभाध्यक्ष, राजा मानें। आप अद्भुत=आश्चर्य विचित्र शक्तिमय हैं, तथा प्रियस्वरूप ही हैं। इन्द्र जो जीव उसको कमनीय (कामना के योग्य) आप ही हैं। "सनिम्" सम्यक् भजनीय और सेव्य भी जीवों के आप ही हैं। मेधा अर्थात् विद्या, सत्यधर्मादि धारणवाली बुद्धि को हे भगवन् ! मैं याचता हूँ सो आप कृपा करके मुझ को देओ। "स्वाहा" यही स्वकीय वाक् आह=कहती है कि एक ईश्वर से भिन्न कोई जीवों को सेव्य नहीं है। यही वेद में ईश्वराज्ञा है, सो सब मनुष्यों को मानना अवश्य योग्य है ॥ ५२ ॥

पदार्थः—(सदसस्पतिम्) सभापति सभाध्यक्ष राजा को (अद्भुतम्) अद्भुत=आश्चर्य विचित्र शक्तिमय को (प्रियम्) प्रिय स्वरूप को (इन्द्रस्य) इन्द्र जो जीव उसके (काम्यम्) कमनीय= कामना के योग्य को (सनिम्) सम्यक् भजनीय और सेव्य को (मेधाम्) विद्या सत्य धर्मादि धारण वाली बुद्धि को (अयासिषम्) मैं याचता हूँ (स्वाहा) यही स्वकीय वाक् कहती है कि एक ईश्वर से भिन्न कोई जीवों का सेव्य नहीं है, यही वेद में ईश्वराज्ञा है ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! अहं स्वाहा यं सदसस्पतिम् अद्भुतं इन्द्रस्य काम्यं प्रियं परमात्मानमुपास्य संसेव्य च सनिं मेधामयासिषं परिचर्यैतां यूयमपि प्राप्नुत ॥ ●

मूल स्तुति

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते । तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥ ५३ ॥ यजु० ३२ । १४ ॥

व्याख्यान—हे सर्वज्ञाग्ने परमात्मन् ! जिस विज्ञानवती यथार्थ धारणावाली बुद्धि को देव (विद्वानों) के वृन्द "उपासते" (धारण करते) हैं, तथा यथार्थ पदार्थ विज्ञान वाले पितर जिस बुद्धि के उपाश्रित होते हैं, उस बुद्धि के साथ इसी समय कृपा से मुझ को मेधावी कर। "स्वाहा" इस को आप अनुग्रह और प्रीति से स्वीकार कीजिये, जिससे मेरी जड़ता सब दूर हो ॥ ५३ ॥

पदार्थः—(याम्) जिस (मेधाम्) यथार्थ धारणा वाली बुद्धि को (देवगणाः) विद्वानों के वृन्द (पितरः) यथार्थ विज्ञान वाले पितर (च) तथा (उपासते) धारण करते हैं। उपाश्रित होते हैं (तया) उस से (माम्) मुझ को (अद्य) इसी समय (मेधया) बुद्धि के साथ (अग्ने) हे सर्वज्ञाग्ने परमात्मन् ! (मेधाविनम्) मेधावी (कुरु) कर (स्वाहा) इस [प्रार्थना] को आप अनुग्रह और प्रीति से स्वीकार कीजिये ॥

अन्वयः—हे अग्ने विद्वन्नध्यापक जगदीश्वर वा ! देवगणाः पितरश्च यां मेधामुपासते तया मेधया माम् अद्य स्वाहा मेधाविनं कुरु ॥

मूल प्रार्थना

मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः । मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा ॥ ५४ ॥

यजु० ३२ । १५ ॥

व्याख्यान—हे सर्वोत्कृष्टेश्वर ! आप "वरुणः" वर (वरणीय) आनन्दस्वरूप हो, कृपा से मुझ को मेधा=सर्वविद्या-सम्पन्न बुद्धि दीजिये। तथा "अग्निः" विज्ञानमय, विज्ञानप्रद "प्रजापतिः" सब संसार के अधिष्ठाता, पालक; "इन्द्रः" परमैश्वर्य-वान्, "वायुः" विज्ञानवान्, अनन्तबल; "धाता" तथा सब जगत् का धारण और पोषण करने वाले आप, मुझ को अत्युत्तम मेधा (बुद्धि) दीजिये❀ ॥ ५४ ॥

पदार्थः—(मेधाम्) सर्वविद्यासम्पन्न बुद्धि (मे) मुझ को (वरुणः) वर=वरणीय आनन्दस्वरूप (ददातु) कृपा से दीजिये (मेधाम्) पूर्वोक्त (अग्निः) विज्ञानमय विज्ञानप्रद (प्रजापतिः) सब संसार के अधिष्ठाता पालक (मेधाम्) पूर्वोक्त (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् (च) तथा (वायुः) विज्ञानवान् अनन्तबल (च) तथा (मेधाम्) अत्युत्तम मेधा=बुद्धि (धाता) सब जगत् का धारण पोषण करने वाले (ददातु) दीजिये (मे) मुझको (स्वाहा) पूर्व मन्त्रोक्तवत् ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा वरुणः परमेश्वरो विद्वान् वा स्वाहा मे मेधां ददातु अग्निः प्रजापतिर्मेधां ददातु। इन्द्रो मेधां ददातु वायुश्च मेधां ददातु धाता च मे मेधां ददातु तथा युष्मभ्यमपि ददातु ॥●

❀अनेक बार मांगना ईश्वर से अत्यन्त प्रीतिद्योतनार्थ सद्यः दानार्थ है बुद्धि से उत्तम पदार्थ कोई नहीं है उस के होने से जीव को सब सुख होते हैं इस हेतु से वारम्वार परमात्मा से बुद्धि की ही याचना करनी श्रेष्ठ बात है।

मूल स्तुति

इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम् । मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा ॥ ५५ ॥ यजु० ३२ । १६ ॥

व्याख्यान—हे महाविद्य महाराज सर्वेश्वर ! मेरा ब्रह्म (विद्वान्) और क्षत्र (राजा, राज्य, महाचतुर न्यायकारी शूरवीर राजादि क्षत्रिय) ये दोनों आपकी अनन्त कृपा से यथावत् अनुकूल हों। "श्रियम्" सर्वोत्तम विद्यादि लक्षणयुक्त महाराज्य श्री को हम प्राप्त हों।

हे "देवाः" विद्वानो ! दिव्य ईश्वरगुण परमकृपा आदि, उत्तम विद्यादि लक्षण समन्वित श्री को मुझ में अचलता से धारण कराओ उस को मैं अत्यन्त प्रीति से स्वीकार करूँ और उस श्री को विद्यादि सद्गुण वा सर्व संसार के हित के लिये तथा राज्यादि प्रबन्ध के लिये व्यय करूँ ॥ ५५ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीयुतविरजानन्दसरस्वती-
स्वामिनां महाविदुषां शिष्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना
विरचित-आर्याभिविनये द्वितीयः प्रकाशः सम्पूर्णः ॥
समाप्तश्चाऽयङ्ग्रन्थः ॥

पदार्थः—(इदम्) यह (मे) मेरा (ब्रह्म) ब्रह्म=विद्वान् (च) और (क्षत्रम्) क्षत्र=राजा, राज्य, महाचतुर न्यायकारी शूरवीर राजादि क्षत्रिय (च) और (उभे) दोनों (श्रियम्) सर्वोतम विद्यादि-लक्षण युक्त महाराज्य श्री को (अश्नुताम्) प्राप्त हों (मयि मुझ में (देवाः) हे विद्वानो ! (दधतु) धारण कराओ (श्रियम्) दिव्य ईश्वर

गुण परम कृपा आदि श्री को (उत्तमाम्) उत्तमविद्यादि लक्षण समन्वित श्री को (तस्यै) उसको/उस श्री को विद्यादिसद्गुण वा सर्वसंसार के लिये (ते) तथा राज्यादि प्रबन्ध के लिये (स्वाहा) मैं अत्यन्त प्रीति से स्वीकार करूँ/व्यय करूँ ॥

अन्वयः—हे परमेश्वर ! भवत्कृपया हे विद्वन् ! तव पुरुषार्थेन च स्वाहा मे ममेदं ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुतां यथा देवा मय्युत्तमां श्रियं दधतु तथाऽन्येष्वपि । हे जिज्ञासो ! ते तुभ्यं तस्यै वयं प्रयतेमहि ॥

विषय-सूची

"स्वयम् आर्य बनो और दूसरों को आर्य बनाओ"

"असत्य का खण्डन और सत्य का मण्डन प्रेमपूर्वक करो"

"अज्ञान का नाश और ज्ञान का प्रचार करो"

"स्वयम् आर्य बनो और दूसरों
को आर्य बनाओ"

"असत्य का खण्डन और सत्य
का मण्डन प्रेमपूर्वक करो"

"अज्ञान का नाश और ज्ञान का
प्रसार करो"